नमः टेऊँ रामाय

ॐ

ॐ नमः सर्वानन्दाय

श्री सत्नाम साक्षी



अमरापुर दर्शन

प्रकाशक

प्रेम प्रकाश मण्डल

ॐ नमः टेऊँरामाय ॐ नमः सर्वानन्दाय

ॐ

श्री सत्नाम साक्षी

अमरापुर दर्शन

लेखक :
श्री स्वामी हरिदासरामजी महाराज

प्रकाशक :
श्री स्वामी हरिदासरामजी महाराज एवं श्री प्रेम प्रकाश मण्डल
अमरापुर स्थान, जयपुर 302 001
राजस्थान (भारत)

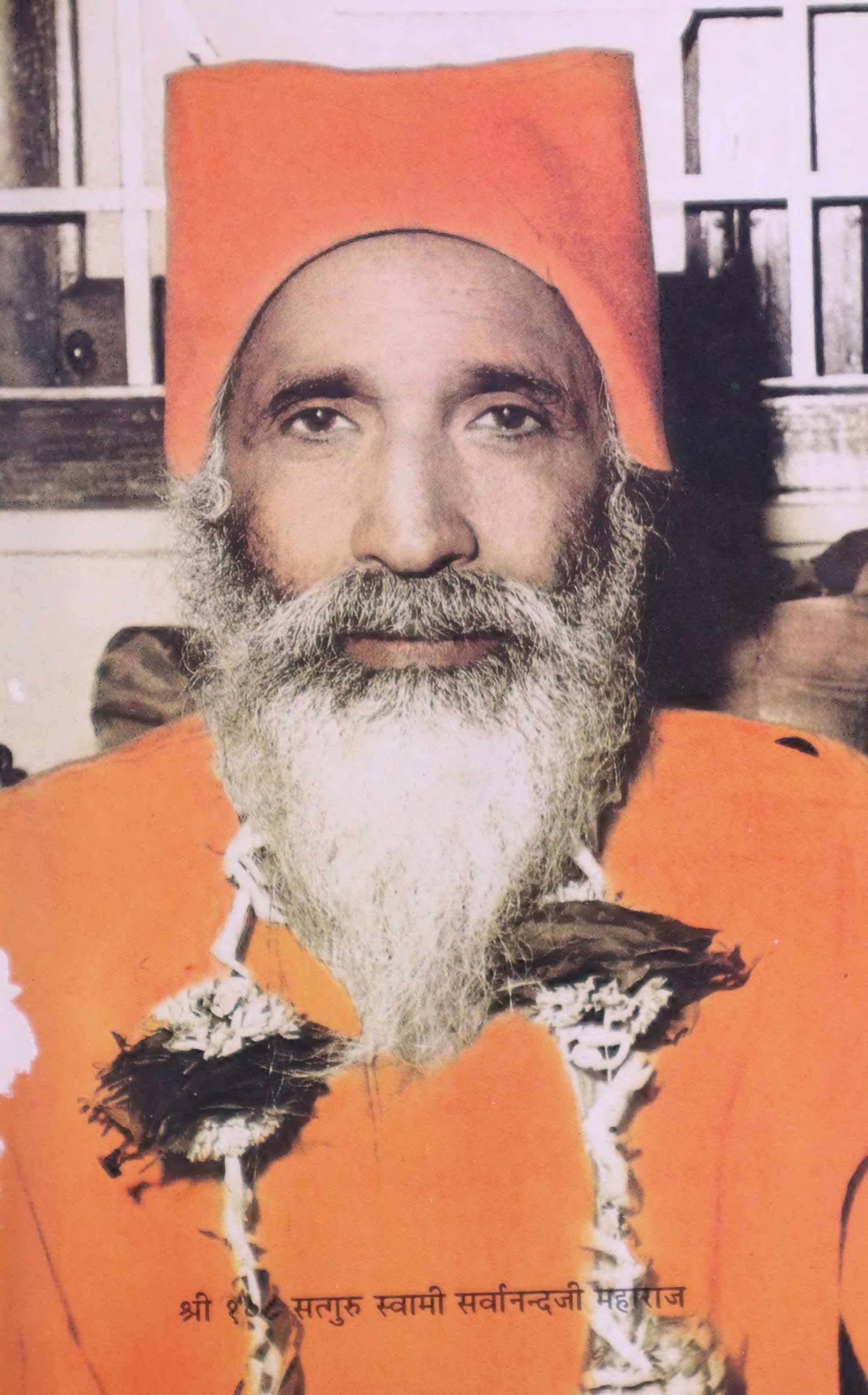
द्वितीयावृत्ति ३००० ७४वाँ चैत्र मेला, १९९५
रुपये : १५/- सम्वत् २०५२

वाक्पटुता, मधुर भाषण, आडम्बर और मान-प्रतिष्ठा को बुद्धिमान् लोग चरित्र नहीं कहते, जिस व्यक्ति में चरित्र हो उसे ही साधु कहते हैं।

*

अपने विचारों को सीमा मत समझो, पर आरम्भ समझो।

स्वामी टेऊँरामजी



श्री १०८ सतगुरु स्वामी सर्वानन्दजी महाराज

ॐ

॥ ॐ श्री सत्नाम साक्षी ॥

प्रार्थना

दोहा

सद्‌गुरु मुझको दान दे, प्रेम भक्ति विश्वास।
कह टेऊँ नित सुमति दे, सन्तन माहिं निवास॥
सद्‌गुरु तुम पूर्ण करो, मेरी यह अरदास।
कह टेऊँ मन में कभी, रहे न जग की आस॥

छन्द

आशवन्दी गुरु तो दर आई, तुम बिन ठौर न काई।
तूं हरि दाता तूं हरि माता, मेरी आश पुजाई॥
पाय पलव मैं पेर पियादी, आयसि हेत मंझाई।
तन मन धन अर्दास करे मैं, मांगत नाम सनेही॥
नाम तुम्हारा साबुन करसां, धोसां पाप सभेई।
कहे टेऊँ गुरु लोक तीन में, आवागमन मिटाई॥

भजन

सुनो दीनानाथ प्रभु, अर्ज यह हमारा।
अभय दान देहि और गंगा का किनारा॥ टेक॥
चान्दनी की यामिनी में, चमक रहे तारा।

सुरसरी तट नाम जपूं, चलत ठंडी धारा॥ १ ॥
राज की न चाह मुझे, चहूं सुत न दारा।
चहूं जंगल वास करूं, तत्त्व का विचारा॥ २ ॥
रहे नाहिं पाप ताप, द्वन्द्व दूख सारा।
चिन्त किस की ना रहे, होय दिल बहारा॥ ३ ॥
रैन दिवस चाह यही, दरस हो तुम्हारा।
और मुझे होत रहे, सन्त का दीदारा॥ ४ ॥
कहे टेऊँ टेर यही, सुनो प्राण प्यारा।
आदि मध्य अन्त रहे, तेरा ही सहारा॥ ५ ॥

शान्तिः! शान्ति !! शान्ति !!!

ॐ

॥ श्री सत्नाम साक्षी ॥

।। स्वामी टेऊँराम ॥

महाभाग्यशाली यशस्वी भक्तवर श्री चेलारामजी और यशस्विनी मनस्विनी महाभागा पूज्या माता श्रीमती कृष्णादेवीजी के घर में संवत् १९४४ आषाढ़ शुक्ला षष्ठी तिथि शुभ शनिवार के दिन प्रात:काल की शुभ बेला में सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज ने अवतार धारण किया। सत् पुरुषों के अवतार धर्म-रक्षा के लिये ही होते हैं।

चौ.- जब-जब होय धर्म की हानी,
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।
तब-तब धर प्रभु विविध शरीरा,
हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा ॥ -रामायण

जब-जब धर्म-मर्यादाओं का नाश करने वाले असुर अधर्म और अभिमानी दुर्दांत (जिनका दमन करना कठिन हो) लोग बढ़ जाते हैं और अपने कठोर कर्मों से माता-पिता, देवी-देवता, साधु-महात्मा, गौ, ब्राह्मण और धरती इत्यादि को असहनीय पीड़ाएँ पहुँचाने लगते हैं, धर्म-मर्यादाओं का नाश करने लगते हैं, तब-तब करुणा वरुणालय परम-पिता परमात्मा अनेक रूपों में प्रकट होकर राक्षसों का नाश करते हैं और सज्जन पुरुषों की रक्षा करते हैं। धर्म की स्थापना करते हैं। आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज ईश्वरांशावतार थे। बाल्यावस्था से ही भगवान की भक्ति में लग गये। भक्ति पथ में कई बाधाएँ आती हैं।

यह कोई नई बात नहीं है, आचार्यजी ने लीला मात्र से समस्त बाधाओं को पार कर लिया। अंश अवतार होने के कारण आचार्यजी का बचपन में ही जल के अधिष्ठाता देवता भगवान वरुण देव (जिसने सिंधु प्रदेश के हिन्दुओं की रक्षा के लिये अवतार लिया था) से भेंट हो गयी, मिलते ही दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया, दोनों ने एक-दूसरे का सम्मान-सत्कार किया। आप्तकाम (पूर्णकाम) होते हुए भी मनुष्य लीला करते हुए आचार्यजी भक्ति साधना में जुट गये । जो लोग सत् पुरुषों को नहीं जानते हैं वे लोग अकारण विरोध और द्वेष करते हैं। सत् पुरुष तो सत्य को जानते हैं। सत्य धर्म की रक्षा के लिये ही जिनका अवतार होता है, वे विरोध और द्वेष करने वालों को बुरा नहीं मानते।

जिन महापुरुषों ने ब्रह्म का साक्षात दर्शन कर लिया है उनके लिये दूसरा, तीसरा नहीं रहता ॥ न किंचन द्वेष्टि तथा न किंचिदपि कांक्षति॥ तत्वज्ञ लोग न तो किसी से द्वेष करते हैं, न किसी की इच्छा करते हैं ॥ न स्तौमि न च निन्दामि आत्मनोऽन्यत्रहि क्वचित्॥ वे न तो किसी की निन्दा करते हैं न किसी की स्तुति में फंसते हैं। कहने का मतलब वे सत् पुरुष सदा धर्म-मर्यादा के पथ पर चलते हैं, कर्म, उपासना, ज्ञान, भक्ति, योग और तप आदि जब अपनी पराकाष्ठा को पहुंच जाते हैं, तब साधक संसार बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है आचार्यजी की भक्ति भी चरम सीमा को पार कर चुकी थी, इसलिए विरोध और द्वेष करने वाले लोगों के मनोभाव बदल गये। अब खण्डू निवासियों का प्रेम बढ़ने लगा।

आचार्यजी का धवल यश चारों ओर फैलने लगा। इस प्रेम और यश को भी माया कहा गया है, इसे सत्व गुणी माया कहते हैं। ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म बन जाता है। ब्रह्म को माया छू नहीं सकती।

॥ नात्मानं माया स्पृशति ॥ फिर भी जन-साधारण को कर्म द्वारा शिक्षा देने के लिये खण्डू निवासियों के बढ़ते हुए प्रेम को देखकर आचार्यजी ने खण्डू छोड़ने का विचार किया। सत् पुरुष सत्य संकल्प होते हैं। जैसे भगवान श्रीरामजी ने अयोध्यावासियों के बढ़ते हुए प्रेम को देखकर वन जाने का संकल्प किया था। भगवान श्रीकृष्णजी ने ब्रजवासियों के बढ़ते हुए प्रेम को देखकर द्वारका जाने का संकल्प किया था। आचार्यजी ने भी खण्डू गांव छोड़ने का संकल्प किया। खण्डू को छोड़कर आचार्यजी टण्डा आदम नगर में आ गये। दो दिन के बाद आचार्यजी घूमते हुए नगर की दक्षिण दिशा को जा निकले, थोडी देर वहाँ टहल कर वापिस आ गये। दूसरे दिन टण्डा आदम के प्रेमियों से बिदा होकर कुछ शिष्यों को साथ लेकर चले, नगर से बाहर निकलकर जब दक्षिण दिशा की ओर चले तब शिष्यों ने रास्ता बतलाते हुए कहा कि हे भगवन् ! खण्डू तो इस तरफ है। आचार्यजी ने कहा कि हम लोग खण्डू नहीं चल रहे हैं, पर जहाँ कल चले थे वहाँ चल रहे हैं क्योंकि वह जगह योगियों की है। जिस जगह पर आचार्यजी ने डेरा लगाया था, वह जगह टण्डा आदम नगर की दक्षिण दिशा में नगर से लगभग एक कोस की दूरी पर थी। चारों तरफ सफेद बालू के ऊँचे-नीचे ढेर थे। छोटे-बड़े कई प्रकार के जंगली पेड़ थे। बहुत घना जंगल था। कई प्रकार के जंगली जानवर सर्प-बिच्छू आदि जीव-जन्तु थे। वहाँ पहुँचकर आचार्यजी एक कंडी वृक्ष (शमी) के नीचे बैठ गये। शिष्यों को भी दूर-दूर और अलग-अलग जाकर बैठने की आज्ञा दी। जब सूर्य देव अस्ताचल को जाने लगे तब सबको बुलाकर आचार्यजी ने सूखी लकड़ियाँ लाने की आज्ञा दी। अब निशा देवी ने चारों ओर से अपना अधिकार जमा लिया था। आग जलाकर सब लोग बैठ गये, थोड़ी देर के बाद आचार्यजी ने शिष्यों को

कीर्तन करने की आज्ञा दी। आधी रात तक कीर्तन होता रहा, फिर सब लोग बालू पर सो गये। आचार्यजी योग निद्रा में सो गये। प्रात:काल होते ही आचार्यजी ने सबको जगाकर प्रात:कालीन कीर्तन करने की आज्ञा दी। इस तरह वहाँ पर जंगली फल खाकर आचार्यजी तपस्या करने लगे। कई दिन बीत गये।

दोहा :- भगती कर पाताल में, प्रगट होय आकास ।
रजब तीनों लोक में, छिपे न हरि का दास ॥

कुछ दिनों के बाद एक दूध बेचने वाले के द्वारा सन्तों के जंगल में रहने का समाचार पाकर श्री मूलचन्द मोदी प्रेमियों के साथ आचार्यजी के पास पहुँच गये, फिर धीरे-धीरे सब लोगों को आचार्यजी के जंगल में रहने का मालूम हो गया। अब सब लोग वहाँ पर आने-जाने लगे। उसी जगह पर आचार्यजी ने आश्रम बनाने का संकल्प किया। बालू के टीलों को समतल कर रहने के लिये घास-फूस की झोपड़ियाँ और सत्संग-कीर्तन के लिये एक बड़ा छप्पर इत्यादि बनाये गये। भोजन-जल इत्यादि की भी व्यवस्था की गयी। फल-फूल, सब्जियाँ भी लगायी गयीं। नियमानुसार सत्संग होने लगा। लोगों की भीड़-भाड़ होने लगी। सब कार्यक्रम सुचारु ढंग से चलने लगा।

टण्डा आदम नगर के पूर्व में गुजरानपुरी नामक संन्यासियों का एक बड़ा आश्रम था। वहाँ पर मेला मनाया जा रहा था। आचार्यजी को भी वहाँ पर पधारने के लिये निमन्त्रण भेजा गया था।

वरियल वेद नाम का एक भगत जो कि आचार्यजी के पास ठहरा हुआ था, वह भी आचार्यजी के साथ मेले में गया था, आचार्यजी ने भगत वरियल वेद को कीर्तन करने की आज्ञा दी। उस मेले में बड़े-बड़े

विद्वान, पण्डित, पुजारी, ब्राह्मण और नगर के बड़े-बड़े सेठ लोग भी आये थे। टण्डा आदम को सिंध की काशी कहा करते थे, क्योंकि वहाँ पर बहुत मन्दिर थे। विद्वान ब्राह्मण लोग भी अधिक संख्या में रहते थे, आज्ञा पाकर भगत वरियल वेद ने कीर्तन आरंभ किया, अपने कीर्तन में उसने जो कुछ कहा, उसका मतलब यह था कि भ्रम-संशयों को छोड़कर राम नाम का स्मरण करना चाहिये। भजन को सुनकर पुजारी ब्राह्मण लोगों का पारा चढ़ गया, वे आग-बबूला हो गये। लाठियाँ और जलती हुई लकड़ियाँ लेकर मंच पर बैठे कीर्तन करते हुए भगत वरियल वेद को मारने दौड़े, अचानक यह आक्रमण (हमला) देखकर भगत वरियल वेद घबरा गया और जिस आसन पर आचार्यजी बैठे थे एकदम उसके नीचे जा छुपा। पुजारी लोग क्रोध के मारे जिनके हाथ-पांव काँप रहे थे, आँखें लाल हो रही थीं, आचार्यजी को कहने लगे कि आप हट जाइये तो हम इसको जान से मारेंगे। इतने में आचार्यजी के दो शिष्य उठ खड़े हुए और दूर से ही पुजारियों को ललकार कर कहने लगे कि सावधान! अगर आगे बढ़े या भगत को मारा तो आप लोगों का भी कल्याण कर देंगे। चाहे आप लोग दस-बीस क्यों न हों, पर हम दो ही आप सबके लिये काफी हैं। यह धमकी सुनकर पुजारी लोग जरा डर गये, झगड़ा बढ़ता हुआ देखकर आचार्यजी उठ खड़े हुए, हाथ जोड़कर सबको शान्त करते हुए मर्म भरे शब्दों में पुजारी ब्राह्मणों को कहने लगे कि जो कुछ भी भगत ने कहा है, उस विषय में यदि आप लोगों को शंका-समाधान करना है तो बड़ी प्रसन्नता से उत्तर-प्रश्न कर सकते हो, शास्त्रार्थ करना हो तो वह भी बड़ी खुशी से करो, बाकी इस प्रकार अज्ञानियों की तरह झगड़ा-लड़ाई करना सन्तों-ब्राह्मणों का धर्म नहीं है। यह भगत वरियल वेद जो कि हमारे अतिथि हैं, आप लोग

इसको मार-पीट करें और हम देखते रहें यह तो नहीं हो सकता। यह अतिथि का अपमान नहीं पर हमारा अपमान है। यदि आप लोगों को मारना ही है तो पहले हमें मारो। ये वचन सुनकर पुजारी लोग बाहर से तो शान्त हो गये, पर अन्दर में जलते रहे। उस समय तो वे कुछ कर न सके, अपशब्द बोलते हुए वे लोग चले गये। आचार्यजी भी मण्डली के साथ आश्रम पर आ गये।

उधर पुजारी लोग प्रतिशोध (बदला लेना) में लगे थे। उन्होंने नगर के बड़े-बड़े लोगों और ब्राह्मणों, पण्डितों को उल्टी-सीधी बातें समझा कर अपने पक्ष में कर लिया ॥ अर्थी दोषान्न पश्यति ॥ स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ के लिये सबकुछ करते हैं। हानि-लाभ का विचार नहीं करते। आचार्यजी को उस स्थान से हटाने के लिये बहुत प्रयास (उपाय) किये गये, लेकिन सब व्यर्थ। अन्त में राज्य अधिकारियों से मिलकर आचार्यजी को वहाँ से हटाने और आश्रम को जला देने की योजना बनाई गई। एक दिन शाम का समय था, सत्संग समाप्त हो चुका था, सत्संगी लोग चले गये थे, आचार्यजी छप्पर में बैठे थे, सन्त सेवाधारी अपनी-अपनी सेवा में लगे हुए थे। उस समय विरोधी लोग पुलिस कर्मचारियों और नौकरों को साथ लेकर वहाँ आये। आचार्यजी को राज्य सरकार का आदेश-पत्र दिखाकर, धमका कर कहने लगे कि महाराज ! यह जो आप लोगों ने सरकारी जमीन पर अधिकार कर रखा है, यह बड़ा अपराध है अब जल्दी इस स्थान को छोड़ दो, यहाँ से निकल जाओ, हम आग लगायेंगे। यह बात सुनकर क्षण भर के लिये आचार्यजी ध्यान-मग्न हो गये, फिर मुस्कराते हुए मधुर वाणी में कहने लगे कि आप लोगों को जैसा आदेश मिला है, वैसे कीजिये। उन लोगों को ऐसा कहकर आचार्यजी छप्पर से बाहर निकल आये। फिर सब

सन्तों और सेवाधारियों को बुलाकर कहा कि आप सब लोग यहाँ आ जायें। आज्ञा पाकर सब लोग आचार्यजी के पास आ गये। आचार्यजी वहीं खुले मैदान में बैठ गये। पुलिस और नगर के लोगों को देखकर सन्त और सेवाधारी इधर-उधर इसलिये देखने लगे कि आज क्या बात है, जो ये लोग आये हैं। सेवाधारियों की चेष्टाएं देखकर आचार्यजी ने सबको शान्त रहने का इशारा कर कहा कि तुम सब लोग यहाँ मेरे पास बैठ जाओ। जो कुछ भी हो वह शान्ति से देखते रहो। आज्ञा पाकर सब लोग आचार्यजी के चारों ओर बैठ गये। यह देखकर विरोधी लोग आचार्यजी को कहने लगे कि अपना सामान झोपड़ों से बाहर निकालो, नहीं तो वह भी जल जायेगा। आचार्यजी ने कहा कि जिसका होगा उसका जलेगा। जलने दो हमारा कोई मतलब नहीं। फिर तो झोंपड़ियों व छप्परों को आग लगा दी गयी। घास-फूस की बनी झोंपड़ियों में लगी आग को लपटें आकाश को छूने लगीं। बहुत दूर-दूर तक आग की लपटें दिखाई पड़ने लगीं। (वह आग बराबर तीन दिन तक जलती रही)। कुएं-बगीचे आदि सारे आश्रम को तहस-नहस कर विरोधी लोग चले गये। सन्त, सेवाधारी लोग वहीं मैदान में बालू पर सो गये। आचार्यजी योग निद्रा में सो गये। प्रात:काल सबको जगाकर आचार्यजी कीर्तन में लग गये।

आश्रम को लगायी गयी आग का समाचार चारों ओर फैल गया। दिन निकलते ही लोगों की भीड़ लग गयी। कई बड़े-बड़े लोग आये और आचार्यजी को प्रार्थना कर कहने लगे कि आप इस जगह को छोड़ दें, आपको जितनी और जिस प्रकार की जगह चाहिये वह हम आपको दे देंगे। बहुत कुछ प्रार्थना करने पर आचार्यजी ने कहा कि मुझे जगह की कोई आवश्यकता नहीं है, न ही मुझे इस जगह के लिये कोई ममता

है। पर मैंने सुन रखा है कि भगवान भक्तों के पास आता है। अब मैं यह देखना चाहता हूँ कि वह भगवान किस रूप में और कैसे आता है। आचार्यजी का दृढ़ निश्चय देखकर सब लोग चले गये अब भजन-भोजन इत्यादि अन्य कार्य नियमानुसार चलने लगे।

बराबर सात दिन के बाद एक दिन प्रात:कालीन सत्संग चल रहा था। उस समय एक यूरोपीयन (European) दम्पति (पति-पत्नी) वहाँ पर आकर आचार्यजी से पूछने लगे कि यह स्थान किसने जलाया है? यह सुनकर आचार्यजी ने कहा, आपने जलाया है। दो-चार बार पूछने पर आचार्यजी ने वही उत्तर दिया। यह सुनकर पति-पत्नी दोनों हंसने लगे। फिर कहने लगे कि आप चिन्ता न करें यह जगह आपकी है, आपको ही मिलेगी। पर आप एक काम करो, वह यह कि एक प्रार्थना-पत्र कराची के कमिश्नर को भेज दें, बाकी सब कार्य हम करेंगे। आचार्यजी ने कहा कि हम कुछ भी नहीं करेंगे, जो कुछ करना हो, आप जाकर करें। ऐसा सुनकर दोनों (पति-पत्नी) हंसते हुए चले गये। आचार्यजी ने देखा कि वे दोनों थोड़ी दूर जाकर अन्तर्धान हो गये। उनके चले जाने के बाद सन्तों व सेवाधारियों ने आचार्यजी से पूछा कि हे भगवन् ! वे कौन थे? आचार्यजी ने मुस्करा कर कहा कि वे लक्ष्मीनारायण थे। कुछ दिनों के बाद वह सारी जगह सरकार द्वारा आचार्यजी को अर्पण की गयी। उसी स्थान पर अमरापुर (डिब्ब) का निर्माण हुआ। टण्डा आदम के तीन तरफ से कुन्दनपुरी, जुम्मनपुरी, गुजरानपुरी थी और चौथे दक्षिण में आचार्यजी ने अमरापुर स्थान की स्थापना की।

यह ७४वाँ चैत्र मेला जो यहाँ जयपुर में मनाया जा रहा है, जिस मेले में आप सज्जन सम्मिलित हुए हो, इस चैत्र मेले का शुभारम्भ चैत्र

मास शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तिथि को सद्‌गुरु टेऊँरामजी महाराज ने स्वयं अपने कर-कमलों से किया था। अमरापुरी (जिसे डिब्ब भी कहते हैं) की स्थापना, चैत्र मेले के शुभारम्भ के पश्चात् आचार्यजी ने अपना पंथ बनाया, जिसे प्रेम प्रकाशी पंथ की संज्ञा दी। आचार्यजी ने एक नये पंथ की अवश्य स्थापना की, पर इसको मनमाना या कल्पित नहीं कहा जा सकता।

चौ. मारग सोई जा कहं जोई भावा,

पण्डित सोई जो गाल बजावा "रामायण"

कलियुग के लक्षणों का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि कलियुग में मनमाने व कल्पित पंथों की रचना बढ़ जायेगी। मनमाने पंथ किसको कहते हैं? जैसे आचार्य श्री टेऊँरामजी महाराज ने इस प्रेम प्रकाशी पंथ की स्थापना की उससे पहले आचार्यजी के पूज्यपाद गुरुदेव स्वामी आसूरामजी महाराज ने किसी पंथ की स्थापना नहीं की थी, यदि स्वामी आसूरामजी महाराज ने पहले किसी पंथ की स्थापना की होती तो फिर आचार्यजी का यह प्रेम प्रकाशी पंथ मनमाना या कल्पित कहलाता। आचार्यों के पथ को छोड़कर अपनी पूजा, मान प्रतिष्ठा के लिये जो पंथ बनाये जाते हैं, वे मनमाने व कल्पित पंथ कहलाते हैं। आचार्यजी स्वयं धर्म के ज्ञाता थे, वे वेद मर्यादा का कैसे उल्लंघन करते। अत: आचार्यजी ने किसी भी मनमाने या कल्पित पंथ की स्थापना नहीं की थी। शंका के लिये कोई स्थान नहीं है।

आचार्यजी ने अपने मूल मन्त्र को "सत् नाम साक्षी" की संज्ञा दी, जो प्रेम प्रकाशियों का सगुण मन्त्र एवं प्रणाम मन्त्र है। आचार्यजी ने अपने ग्रन्थ की रचना की जिसको "प्रेम प्रकाश" ग्रंथ की संज्ञा दी। आचार्यजी ने सत्य-धर्म का मार्ग कभी नहीं छोड़ा। जनसाधारण को भी

सत्य धर्म का उपदेश करते थे। यथा - माता-पिता, सास-ससुर, पति, गुरु की सेवा करना, चोरी न करना, पक्षपात न करना, दहेज न लेना, घूस न लेना, मांस-शराब-अण्डे इत्यादि न खाना न पीना, सच को न छिपाना, निर्भय रहना, विषयों और विकारों को जीतना, सच और मीठा बोलना, जो सच कड़वा लगे वह न बोलना, जो झूठ मीठा लगे वह न बोलना, छल-कपट रहित व्यवहार करना, सोच-समझ कर वचन देना, जो वचन दो उसको निभाना, चुगली-निन्दा न करना, सिनेमा-क्लब न जाना, सच को झूठ और झूठ को सच न बनाना, धैर्य रखना, क्षमा करना, दान करना, शास्त्र पढ़ना, प्यासे को पानी पिलाना, भूखे को भोजन खिलाना, नंगे को वस्त्र देना, रोगियों की सहायता और सेवा करना, गऊ सेवा करना, नीचों का संग न करना, कृतघ्नों से दूर रहना, संशय-भ्रम में न फँसना, जादू-टोना, धागा, फीणा न करना, चापलूस न बनना, भीख न माँगना, बिना कारण किसी का दिल न दुखाना, घर की बातें किसी को न बताना, हाथ न दिखाना, लज्जा करना, सहन करना, त्याग करना, देश और समाज का द्रोही न बनना, न डराना न डरना, सबका भला चिन्तन करना, ताने न मारना, हँसी-मजाक न करना, मिलावट न करना, न कम तोलना न कम मापना इत्यादि सब बातों को सत् कहते हैं। ये सब बातें सत्संग कहलाती हैं। इन बातों से विपरीत बातों को असत्य कहते हैं। इस प्रकार के सत्संग से माता-पिता, पति, गुरु और भगवान प्रसन्न होते हैं। आचार्यजी दृढ़-निश्चयी और कृत संकल्प थे। ऐसे महान् आत्मा गुरुदेव के चरणों में बार-बार प्रणाम करते हैं। वे हम सभी को सद्बुद्धि प्रदान करें ताकि हम सभी अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए जीवन-यात्रा सफल करें।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ॐ

॥ श्री सत्नाम साक्षी ॥

॥ स्वामी सर्वानन्द ॥

परम श्रद्धेय प्रात:स्मरणीय ब्रह्मर्षि सद्गुरु स्वामी सर्वानन्दजी महाराज का जन्म सम्वत् १९५४ के मंगलमय आश्विन मास की शुक्ला चतुर्दशी (सिंधी असू मास, दिनांक १२) तिथि गुरुवार के शुभ दिन सिंध प्रदेश (भारत) में सिंधु दरिया के समीप स्थित भिटशाह नामक एक छोटे से गाँव में कीर्तिमान पिता भक्तवर श्री सेवकरामजी और यशस्विनी माता ईश्वरी बाई के घर में हुआ था । ब्राह्मणों को सादर बुलाकर नवजात शिशु का नामकरण संस्कार करवाया गया। ब्राह्मणों ने बालक का नाम ''सीरू'' रखकर सबको बधाई दी और सब लोग सम्मान-सत्कार पाकर अपने-अपने घर गये।

जैसे कि स्वामीजी का छठी का नाम ''सीरू'' था, फिर आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज ने उसे शिक्षा-दीक्षा देकर उसका नाम बदलकर सर्वानन्द रखा।

स्वामी सर्वानन्दजी महाराज का जन्म धनजानी कुल में हुआ था, जिस कुल में सन्त मदन महितो, सन्त वतायो अवधूत (फकीर), सन्त विशनदासजी, सन्त तीर्थदासजी, अवधूत श्री टेकचन्दजी, सन्त बसर रामजी इत्यादि सन्त भक्त हो गये हैं। यह कहना सही होगा कि धनजानी कुल को अपने पूर्वजों से ही भक्ति का वरदान मिला था। स्वामीजी के ननिहाल वाले फूल वंशी थे, जिस वंश में प्रेम प्रकाश सम्प्रदाय के

प्रवर्तक आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज ने धर्म रक्षा के लिये अवतार धारण किया था।

छठी उत्सव के पश्चात् आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज कुछ दिनों के लिये वहाँ रुक गये। आचार्यजी की आयु उस समय लगभग दस वर्ष की थी, फिर भी वे ज्ञान के भण्डार और भविष्यदर्शी थे । वे प्रतिदिन बालक सर्वानन्द को ब्रह्मज्ञान की लोरी दिया करते थे। कुछ समय वहाँ रहकर आचार्यजी अपनी बहिन ईश्वरी बाई और भक्त सेवकरामजी से विदा लेकर अपने घर खंडू गाँव चले आये।

भक्त सेवकरामजी दिन भर खेती-बाड़ी के कार्यों में लगे रहते थे और गोधूलि (सायं) के समय घर आ जाते थे और संध्याकालीन कृत्य करते थे, प्रतिदिन रात को घर में नियमानुसार सत्संग भी करते थे। गाँव के और आस-पास के लोग भी सत्संग में आते थे। आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज, स्वामी ग्वालानन्दजी महाराज, सन्त टहलरामजी महाराज भी अपनी बहिन ईश्वरी बाई के पास समय-समय पर आते रहते थे। इस तरह भक्त सेवकरामजी के घर सत्संग का आनन्द बना रहता था। इस कारण से बचपन से ही स्वामीजी पर सत्संग का अच्छा प्रभाव पड़ा । आयु के साथ-साथ ज्ञान भी बढ़ने लगा। माता-पिता, सन्तों और सत्संग की सेवा से स्वामीजी ने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया।

अब स्वामीजी इस संसार के मायाजाल से छुटकारा पाने का उपाय ढूंढ़ने लगे। बहुत सोच-विचार करने के बाद स्वामीजी को यह बात समझ में आ गयी कि बिना पूर्ण गुरु के इस संसार-सागर से पार होना बहुत कठिन है। स्वामीजी ने आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज को गुरु बनाने का मन में पक्का निश्चय कर लिया। एक दिन वह खंडू गाँव को चल पड़े, वहाँ पहुँच कर आचार्यजी को प्रणाम किया, फिर

आचार्यजी को अपना निश्चय बताया। उनके निश्चय को देखकर आचार्यजी ने एक बार उनकी ओर देखा फिर कुछ सोचकर (परीक्षा लेने के विचार से) आज्ञा दी कि फिर कभी आना। ऐसी आज्ञा देकर आचार्यजी चले गये। आज्ञा पाकर स्वामीजी लौट कर वापिस भिटशाह आ गये। इस तरह कई बार स्वामीजी आचार्यजी के पास गये परन्तु उन्हें कार्य में सफलता न मिल सकी।

लगातार नौ वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् स्वामीजी के मन की इच्छा पूर्ण हुई, अचानक एक दिन आचार्यजी ने सर्वानन्द को कहा कि तुम क्या चाहते हो? आचार्यजी के मधुर और रहस्य भरे वचन सुनकर सर्वानन्दजी ने अपना निश्चय निवेदन किया, आचार्यजी ने सर्वानन्द को सगुण मन्त्र ''सत् नाम साक्षी'' का उपदेश देकर मन्त्र के विषय में समझाकर कहा कि धरती, जल, अग्नि, वायु, आकाश, दिशाएँ, दिन-रात, सूर्य, चाँद-सितारे इत्यादि सब परमात्मा के नाम और रूप हैं। परमात्मा के सब नाम सत्य हैं, ये ही साक्षी हैं। जो-जो मनुष्य जहाँ-जहाँ जिस-जिस समय शुभ या अशुभ कर्म करता है, वे ही उसके उन कर्मों के साक्षी होते हैं, वे ही गवाह बनकर परलोक में परमात्मा के सामने प्रत्येक मनुष्य के कर्मों के बारे में गवाही देते हैं। आचार्यजी के दिये गये सगुण मन्त्र को स्वामीजी ने विधिवत ग्रहण किया, फिर आचार्यजी की आज्ञा पाकर स्वामीजी अपने गाँव चले आये। कुछ समय पश्चात् स्वामीजी को योग्य अधिकारी समझ कर आचार्यजी ने उन्हें निर्गुण मन्त्र का उपदेश दिया और विधिवत् संन्यास भी दे दिया। आचार्यजी की दी गयी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने के लिये स्वामीजी ने अपने जीवन का बहुत-सा समय हिमालय की गहन झाड़ियों में श्री गंगाजी के पावन तट (किनारे) पर तपस्या करते हुए

बिताया और शेष समय आचार्यजी की सेवा में लगाया। तपस्या के धनी स्वामीजी ने अपना सब-कुछ आचार्यजी के चरण-कमलों में अर्पण कर दिया था।

स्वामीजी ने अपने जीवनकाल में कठोपनिषद राजा शिखरध्वज-रानी चूड़ाला, वामन-बलि इत्यादि इतिहासों की कविता में रचना की और सर्वानन्द सन्देश की गद्य में रचना की। स्वामीजी की और भी बहुत-सी रचनाएँ हैं जो धीरे-धीरे प्रकाशित की जायेंगी।

स्वामीजी अनन्य गुरु भक्त थे। गुरुतत्त्व को समझने वाला ही अनन्य भक्त बन सकता है। गुरु तत्त्व को अच्छी तरह से समझ लेना भी सबके बस की बात नहीं है। गुरु तत्त्व को जानने वाला संशय-भ्रमों में नहीं पड़ता। बिना सोचे-समझे गुरु करना, बिना सोचे दान करना, बिना सोचे-समझे गुरु बदलना, अपने आपको निगुरा समझना इत्यादि सब संशय-भ्रम हैं। संशयों को नाश करने वाले शास्त्र हैं। भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी शास्त्रों को प्रमाण माना है।

श्लोक :- अनेक संशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः ॥
श्लोक :- जगद्यथा निरालोकं, जायतेऽशशिभास्करम् ।
बिना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा ॥ (शिव पुराण)

अनेक संशयों को नाश करने वाला, छिपे हुए अर्थ को प्रत्यक्ष दिखलाने वाला, सबका नेत्र रूप शास्त्र, जिसके पास नहीं है, वह निश्चय ही अन्धा है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा के बिना सारा जगत् अन्धकार से भर जाता है, कोई भी कुछ भी नहीं देख सकता है, वैसे ही शास्त्रों के ज्ञान बिना मनुष्य यथार्थ ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

वेदों पुराणों, इतिहासों इत्यादि धर्म ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ने और विचारने से हृदय में दिव्य-ज्ञान का प्रकाश होता है, फिर सब तत्त्व आसानी से समझ में आ जाते हैं। सब तत्त्वों में गुरु तत्त्व बड़ा है।

शास्त्रों में दो प्रकार की विद्याएँ बतलाई गयी हैं, परा और अपरा।

मन्त्र :- तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद:सामवेदोऽथर्ववेद:
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो
ज्योतिषमिति ॥ अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इनको अपरा विद्या कहते हैं। लोक-परलोक के सुख-भोगों की प्राप्ति कराने विद्या को अपरा विद्या कहते हैं। जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा (मुक्ति) दिलाने वाली विद्या को ''परा'' विद्या कहते हैं। दोनों विद्याएं वेदों में हैं। दोनों ही असाधारण विद्याएं हैं। दोनों विद्याओं को जाननेवाले भी असाधारण और दुर्लभ हैं। प्राचीन काल के महर्षि लोग अपने शिष्यों को दोनों विद्याओं का विधिवत् उपदेश करते थे, इसलिये वे लोग शरीर सहित इस लोक से स्वर्ग आदि लोकों में जाकर फिर वापिस आ जाते थे। परा विद्या से वे लोग मुक्त हो जाते थे। आजकल इन दोनों विद्याओं को जाननेवालों का नितान्त (बिल्कुल) अभाव तो नहीं है, पर वे दुर्लभ जरूर हैं। तमाम संसार के सुख-भोगों की प्राप्ति के लिये इन विद्याओं का जानना बहुत जरूरी है। जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति दिलाने वाली ''परा'' विद्या है। जन्म का अर्थ है सुख और खुशी। बच्चों के जन्म पर माता-पिता और सगे-सम्बन्धी लोग खुशियाँ मनाते हैं। इन्सान के मरने पर सम्बन्धी लोग दुखी हो जाते हैं, शोक में डूब जाते हैं। जन्म-मरण का अर्थ है - सुख और दु:ख। जिस मनुष्य को सुखों से मुक्ति पाने की इच्छा हो उसे ही ''परा''

विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु करना चाहिये, जो मनुष्य सुखों से मुक्ति पाना नहीं चाहता उसे गुरु करने की कोई जरूरत नहीं है। (क्योंकि माता-पिता भी गुरु हैं) जो मुक्ति नहीं चाहते ऐसे मनुष्यों को वे विद्याएं पढ़नी, सुननी और सीखनी चाहिए जिनसे अधिक से अधिक धन कमाया जा सके और उस धन से अधिक से अधिक सुख लिया जा सके और संशय भ्रमों से भी बचा जा सके।

कुछ लोग कहते हैं कि जिसने गुरु नहीं किया है वह निगुरा है। (इसका मतलब यह नहीं कि वह नीच है।) निगुरे के मुँह देखने से पाप लगता है, अगर देखा जाये तो कोई भी निगुरा नहीं है॥ मातृ देवो भव। पितृदेवो भव ॥ वेद कहता है कि माता-पिता ही गुरु हैं॥ नास्ति मातृ समो गुरुः॥ माता के समान कोई भी गुरु नहीं है। इन ठोस प्रमाणों से यही मालूम होता है कि माता ही गुरु है, फिर तो निगुरे का कोई सवाल ही नहीं उठता। अर्जुन लगभग ८० वर्ष की आयु में भगवान श्रीकृष्ण के शिष्य बने थे। इतनी आयु बीतने तक वह भी निगुरा रहा होगा। परन्तु ऐसी बात नहीं है, पूरे महाभारत में ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। महाराज जनकजी, श्री शुकदेवजी, देवर्षि नारदजी, महर्षि शौनकजी इत्यादि लोगों ने वेदों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही गुरु की खोज की थी, कोई भी ऐसे नहीं कह सकता कि ये निगुरे थे। सन्त और शास्त्र हमें याद दिलाते रहते हैं कि संसार में कोई भी निगुरा नहीं है। अपने आपको निगुरा समझना बड़ी भूल और भ्रम है। वेद शास्त्र और सन्त महात्मा भी हमें बार-बार समझाते एवं सावधान करते हैं कि कोई भी निगुरा नहीं है।

जो माता-पिता की आज्ञा नहीं मानता है, माता-पिता का (शक्ति रहते) पालन-पोषण नहीं करता है, जो माता-पिता का अपमान करता

है, वह निगुरा है। जो अपनी धर्मपत्नी को घर से निकालता है, पत्नी की हत्या करता है, दहेज लेता है, वह निगुरा है। जो नारी अपने पति, सासु-ससुर की सेवा नहीं करती, उल्टा अपमान करती है, वह निगुरी है। चोरी करने वाले, जुआ खेलने वाले, झूठ बोलने वाले, मांस खाने वाले, शराब पीने वाले, निंदा करने वाले, चुगली लगाने वाले, अन्याय और अत्याचार इत्यादि बुरे कर्म करने वाले निगुरे हैं क्योंकि गुरु के द्वारा हर एक शिष्य को सत्य-धर्म का उपदेश मिलता है, फिर भी जो शिष्य गुरु-आज्ञा नहीं मानता वह निगुरा है । पर जिसने गुरु नहीं किया है वह निगुरा नहीं है। जैसे लड़की जब तक विवाह नहीं करती, तब तक वह कुमारी कहलाती है, भले ही वह पचास वर्ष की क्यों न हो जाये फिर भी उसे कुमारी ही कहा जायेगा, उसे विधवा नहीं कहा जा सकता। पर विवाह के बाद अगर उसके पति का स्वर्गवास हो जाये, फिर भले ही वह बीस वर्ष की क्यों न हो, उसे विधवा कहा जायेगा। वैसे ही जिसने गुरु नहीं किया है वह निगुरा नहीं है पर जो गुरु की आज्ञा नहीं मानता वह निगुरा है। अपने आपको निगुरा समझना भ्रम और अन्धविश्वास है।

आचार्य सद्गुरु टेऊँरामजी महाराज ने प्रेम प्रकाश पंथ (सम्प्रदाय) की स्थापना की, पंथ के आचारों, विचारों और नियमों को पूर्ण रूप से समझाने और ग्रहण करने का स्वामीजी ने भरसक प्रयास किया।

आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज भजन और भोजन पर विशेष ध्यान देते थे ।। अन्न दानं परं दानं ॥ अन्न का दान सबसे उत्तम बताया गया है। आचार्यजी की 'भजन, भोजन' की परम्परा को स्वामीजी ने ज्यों का त्यों बनाये रखा। आचार्यजी की तरह स्वामीजी भी शिष्यों या आम जनता से पैसा नहीं माँगते थे। चंदा इत्यादि अनेक तरीकों से पैसा

इकट्ठा कर अन्न दान करना, गरीबों की सहायता करना और भी अच्छे धर्म-कार्य चलाना, ये गृहस्थियों के कर्तव्य हैं, सन्तों-महात्माओं के कर्तव्य कुछ और होते हैं। सन्तों-महात्माओं का स्थान आम जनता से बहुत ऊँचा बताया गया है।

दोहा :- अन माँगा तो अति भला, माँग लिया नहिं दोष।
उदर समाता माँग ले, निश्चय पावे मोष ॥

श्लोक :- द्वाविमौ पुरुषौ लोके, सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
प्रभुश्च क्षमया, युक्तो, दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥

धर्म को जानने वाले कहते हैं कि न माँगना तो बहुत ही उत्तम है, पर माँग लेना भी दोष नहीं है। जितना पेट में समा सके उतना माँगने वाला निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इस नश्वर संसार में से दो प्रकार के मनुष्य ही स्वर्ग से भी ऊपर जाते हैं। एक शक्तिशाली होते हुए भी धर्म-मर्यादाओं का पूर्णतया पालन करने वाला, दूसरा दरिद्र (निर्धन) होते हुए भी दान करने वाला। (निर्धनता का मतलब यह नहीं है कि पैसे माँग कर दान किया जाये) स्वामीजी ने आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज के वचनों का पूरा-पूरा पालन किया और आचार्यजी के वचनों को घर-घर पहुँचाया।

आचार्यजी की तरह स्वामीजी भी परउपकारी, परमउदारी और महादानी थे, उन्हें कुछ भी जरूरत पड़ती थी तो वह सब अपने ''इष्ट'' गुरुदेव से माँगते थे। स्वामीजी प्रत्येक कार्य सद्‌गुरु टेऊँरामजी महाराज को निवेदन किया करते थे। वे अपने गुरुदेव को ही इष्ट मानते थे। सद्‌गुरु की मूर्ति को वे साक्षात् समझते थे। स्वामीजी को एक ही भरोसा, एक ही विश्वास, एक ही बल, एक ही आशा थी, वह यह कि सद्‌गुरु सदैव मेरे साथ हैं, कभी न कभी दर्शन देंगे।

दोहा :- राम भरोसा राख तुम, और भरोसा त्याग ।
कह टेऊँ हरि शरण ले, खोलो अपना भाग ॥

दोहा :- एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास ।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

बुद्धिमानों के अनुभव हैं कि एक ही परमात्मा में पूर्ण विश्वास रखने से समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

श्लोक :- राजकार्याणि सर्वाणि यावन्ति पृथिवीतले ।
तानि पादुकयोः सम्यङ् - निवेदयति राघवः ॥

श्री भरतलालजी चौदह वर्षों तक भगवान् श्रीरामजी की चरण पादुकाओं को श्रीरामजी का रूप समझ कर प्रतिदिन उनकी सेवा-पूजा किया करते थे और समस्त राज कार्यों को उनके सामने निवेदन किया करते थे।

सिंध (पाकिस्तान) की बात है, आचार्य स्वामी टेऊँरामजी महाराज के ब्रह्मलोक पधारने के बाद चैत्र का मेला मनाया जा रहा था । मेले की तैयारियाँ की जा रही थीं। जिज्ञासु और आम लोग मेले में भाग लेने के लिये आ रहे थे। कराची से श्री प्रभदास हिंगोरानी अपने परिवार सहित (रतन, इन्द्र, जसोता, मोहनी, विशनी, चित्रा, मनू) मेले में आये थे। उस समय कोठार (भण्डार) की व्यवस्था (देखभाल) पर स्वामी चन्दनप्रकाशजी थे। श्री प्रभदास और उसके बच्चे पहले से ही सब सन्तों से परिचित थे। बच्चे पहली बार मेले में आये थे। बच्चों का स्वभाव है, खेलना. कूदना, देखना और पूछना। आश्रम में बहुत बड़ा खुला मैदान था। बच्चों को जो बड़ा मैदान मिल गया इसलिये इधर-उधर खेलने लगे। खेलते हुए सब बच्चे वहाँ जा निकले जहाँ कोठार था। वहाँ पर स्वामी चन्दनप्रकाशजी को देखकर वे उसे चारों तरफ से घेर कर

कोई कुछ पूछने लगा तो कोई कुछ पूछने लगा। एक ने पूछा, बाबाजी? इतने सारे लोग मेले में आये हैं, उन लोगों के लिये भोजन सामग्री भी तो उतनी ही होगी, वह कहाँ है? हमें दिखाओ, हमें दिखाओ कहकर सब बच्चे शोर मचाने लगे। स्वामी चन्दनप्रकाशजी उन बच्चों को लेकर भण्डार में आये और भोजन सामग्री दिखाते हुए कहने लगे कि ये चावल हैं, ये आटा है, ये आलू, प्याज और दालें हैं। भोजन सामग्री देखकर बच्चे कहने लगे कि बस! इतनी-सी सामग्री! इतनी तो हमारे घर में भी है। पर इतने सारे लोग जो मेले में आये हैं तो क्या यह सामग्री कम नहीं पड़ेगी। बहुत लोग देखकर बच्चे एक-दूसरे से कहने लगे कि ये लोग सब भोजन खा जायेंगे, फिर हम क्या खायेंगे? ऐसा कहते हुए बच्चे फिर खेलने-कूदने में लग गये और खेलते हुए अपने पिता के पास जा पहुँचे (भोजन की व्यवस्था पर श्री प्रभदासजी को नियुक्त किया गया था।) इतने में एक सेवाधारी ने आकर प्रभदास को कहा कि आज रात के लिये तो भोजन की व्यवस्था हो गयी और कल सवेरे बच्चों को लिये जो खिचड़ी बनेगी, इतने दाल-चावल हैं, बाकी लोगों के लिये शीघ्र भोजन सामग्री का प्रबन्ध करें। सूचना पाकर प्रभदास स्वामी चन्दन प्रकाशजी के पास गये और भोजन सामग्री के विषय में पूछा, उसने कहा कि भोजन सामग्री इतनी नहीं है जो कल के लिये भोजन बन सके। इस विषय में आप जाकर स्वामी सर्वानन्दजी महाराज को बतायें। फिर जैसी आज्ञा होगी वैसा किया जायेगा। मैं भी आ रहा हूँ।

प्रभदास स्वामीजी के पास आये, उस समय नगर के कुछ सेठ लोग स्वामीजी के पास बैठे थे और मेले के लिये अन्न, धन इत्यादि की अपनी सेवाएं देने के लिये प्रार्थना कर रहे थे। स्वामीजी ने उन लोगों का मन रखने के लिये कहा कि आप लोगों को भी सेवा का अवसर दिया जायेगा।

उन लोगों के चले जाने के बाद प्रभदास ने स्वामीजी को भोजन सामग्री के विषय में बताया (इतने में स्वामी चन्दनरामजी भी आ गये)। प्रभदास ने कहा कि ये जो सेठ लोग सेवा के लिए प्रार्थना कर रहे थे, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उन्हें वापस बुला लूँ, फिर आप उन्हें सेवा को लिये आज्ञा दें, या जो उचित समझें करें, स्वामी चन्दनप्रकाशजी भी अनुरोध करने लगे, पर स्वामी सर्वानन्दजी महाराज का तो एक ही उत्तर था, वह यह कि गुरु महाराज के सिवा और किसी के सामने हाथ नहीं फैलाऊँगा। स्वामीजी के दृढ़ निश्चय को देखकर स्वामी चन्दनप्रकाशजी ने भी विशेष आग्रह करना उचित नहीं समझा। सारी बात सुनकर स्वामीजी ने कहा कि सेठों को कहने की जरूरत नहीं है। मैं अभी जाकर अपने गुरुदेव को (जो सबसे बड़ा सेठ है।) भोजन सामग्री इत्यादि के विषय में प्रार्थना करता हूँ। अगर गुरुदेव ने मेले के लिये आज रात भर में भोजन सामग्री की पूरी व्यवस्था कर दी तो ठीक है, नहीं तो मैं और आप दोनों भाग चलेंगे। इस विषय में सवेरे पाँच बजे से पहले मुझे सूचना दें। स्वामीजी की बात सुनकर प्रभदास अवाक् रह गये, बच्चे हँसने लगे। कुछ सोचता हुआ प्रभदास अपने काम में जाकर लग गया।

अब रात होने लगी। स्वामीजी मन्दिर में गुरुदेव के पास गये, और मेले के कार्यों को गुरुदेव के सामने निवेदन करने लगे। इधर बच्चों को तमाशा लग रहा था, वे आपस में कहने लगे कि हम भी देखेंगे कि स्वामी टेऊँरामजी कैसे भोजन सामग्री भेजते हैं। भोजन सामग्री न आने पर पिताजी व स्वामीजी कैसे भागते हैं। यह सोचकर सब बच्चे बाहर वाले मुख्य दरवाजे पर जाकर बैठ गये। अब रात बीतने लगी। बच्चों को भोजन खाना तो भूल गया पर उन्हें नींद सताने लगी, फिर भी तमाशा देखने की लालच से जैसे-तैसे जग रहे थे।

लगभग आधी रात बीत चुकी थी, अचानक एक ट्रक और सात बैलगाड़ियाँ सामान से भरी हुई दरवाजे के सामने आकर खड़ी हो गयीं, ट्रक और गाड़ियों के चालक बड़े जोर से भगत टेऊँराम, भगत टेऊँराम, कहकर पुकारने लगे। बच्चे जो नींद से ऊँघ रहे थे, आवाज सुनकर सावधान हो गये, और एकदम दौड़कर वहाँ गये और चालकों से पूछने लगे कि क्या बात है? उन्होंने कहा कि भगत टेऊँराम को बुला लाओ तो सामान संभाल ले। हमें देर हो रही है उनको जल्दी बुला लाओ। यह सुनकर बच्चे दौड़कर पिता के पास गये और उन्हें वहाँ ले आये, प्रभदास ने उन चालकों से पूछा कि ये सामान किसने भेजा है? उन्होंने कहा कि सेठ लक्ष्मीनारायणजी ने भेजा है। प्रभदास ने सारा सामान संभाल कर भण्डार में रखवाया। फिर चालकों को कहा कि जरा ठहर जाओ तो मैं स्वामीजी को बुलाकर ले आता हूँ। उन्होंने कहा कि हमें देर हो रही है, फिर कभी आयेंगे। ऐसे कहकर वे लोग चले गये। फिर भी प्रभदास उनके पीछे गया मगर वे न जाने कहाँ अदृश्य हो गये। सवेरा होते ही प्रभदास स्वामीजी के पास गया, चरणों में प्रणाम कर सारी घटना सुनायी, और कहा कि धन्य है आपकी गुरु भक्ति।

यह बात सुनकर स्वामी सर्वानन्दजी के शरीर में रोमांच हो आया, आँखों में आँसू भर आये, गद्गद होकर कहा कि गुरुदेवजी इतना कष्ट उठाकर स्वयं यहाँ पधारे, लेकिन भाग्य की बात है, मैं उनके दर्शन न कर सका। प्रभदासजी आप धन्य हैं जो आपको गुरुदेव के दर्शन करने और बातचीत करने का सुअवसर मिला। बहुधा स्वामीजी गुरुदेव टेऊँरामजी महाराज की शक्ति के विषय में सुनाया करते थे :

''सदगुरु टेऊँराम तेरी, मैंने देखी महान् शक्ति''

एक बार की बात है, स्वामी सर्वानन्दजी महाराज रावलपिण्डी

(पंजाब - पाकिस्तान) में देवी द्वारे में ठहरे हुए थे, प्रतिदिन सत्संग भी करते थे। वहाँ के एक प्रेमी लाला हरीचन्द की लड़की का जिस लड़के से विवाह होने वाला था, उसे जलंधर की बीमारी थी। वे लोग बारात लेकर आये थे, लाला हरीचन्द स्वामीजी के पास आये और सारी बात सुनकर प्रार्थना की कि अब क्या किया जाये? सारी बात सुनकर स्वामीजी ने लाला हरीचन्द को धैर्य व विश्वास दिलाते हुए कहा कि घबराने की कोई जरूरत नहीं है, मैं अभी गुरु महाराज से पूछकर बताता हूँ। एक घंटे के बाद आप मुझसे आकर पूछना। ऐसा कहकर स्वामीजी ने अपनी कुटिया का दरवाजा बन्द कर दिया, लाला हरीचन्द वहाँ ही बैठे रहे। कुछ देर बाद बाहर आकर स्वामीजी ने लाला हरीचन्द को कहा कि गुरु महाराज ने विवाह के लिये आज्ञा दे दी है। आप जाकर विवाह की तैयारी करें। आज्ञा पाकर लाला हरीचन्द ने जाकर विवाह कार्य सम्पन्न किया।

दूसरे दिन सवेरे लाला हरीचन्द अपनी लड़की और दामाद के साथ प्रसाद लेकर स्वामीजी के पास आये, रात में हुई सारी घटना सुनाकर लाला हरीचन्द का दामाद कहने लगा कि विवाह के बाद तबियत ठीक न होने के कारण मुझे नींद तो नहीं आ रही थी, फिर भी लेटा रहा, इतने में मेरी आँख लग गयी। सपने में क्या देखता हूँ कि गेरूरंग का लम्बा चोला पहने हुए, एक हाथ में लाठी दूसरे हाथ में कमंडलु लिये हुए, सफेद दाढ़ी वाला एक महात्मा जिसका चेहरा तेज से चमक रहा था, मेरे सामने खड़ा है। उसने मुझे लाठी मारकर जगाया और पूछा, क्या है? फिर अपने कमंडलु में से पानी निकाल कर मेरे मुँह में डाला और शरीर पर भी छिड़का। मैंने ज्यों ही प्रणाम करना चाहा तो आँख खुल गयी। अब बिल्कुल ठीक हूँ, कोई बीमारी नहीं है।

लाला हरीचन्द परिवार सहित स्वामीजी की महिमा गाने लगा और स्तुति करने लगा, यह देखकर स्वामीजी ने उन्हें समझाते हुए कहा कि लालाजी! आप जल्दी में भूल गये, यह सब महिमा गुरु महाराज की है। वे ही स्तुति के योग्य हैं। आप मेरी स्तुति कर मुझे लज्जित न करें। गुरु महाराज तो अति दयालु हैं, आपके दिल की दर्द भरी पुकार सुनकर वे स्वयं आये और आपकी चिन्ता मिटाकर चले गये। आप उन्हें कभी मत भूलें । उनमें पक्का विश्वास रखो।

स्वामीजी का व्यक्तित्व कैसा निराला था। जो कोई भी उनकी शरण में आता था तो उसे गुरु महाराज के चरणों में लगाते थे। वे अपनी पूजा, प्रतिष्ठा और यश-कीर्ति कभी नहीं चाहते थे। जयपुर की बात है। स्वामी सर्वानन्दजी महाराज अपनी कुटिया में बैठे हुए थे। ब्यावर (राजस्थान) से श्री मूरजमल अपने जवान पुत्र को लेकर स्वामीजी के पास जयपुर आया। अपना सारा दुःख सुना कर कहा कि मेरे इस लड़के घनश्याम की जबान बन्द हो गयी है, बोलना बन्द हो गया है, कई दवाइयाँ व उपाय किये हैं पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ है, अब सब तरफ से निराश होकर आपकी शरण में आया हूँ। आप इस बालक पर कृपा करें। मूरजमल की बात सुनकर स्वामीजी ने उसे हिम्मत और भरोसा दिलाते हुए कहा कि आप चिन्ता मत करो। विश्वास रखो। अब ऐसा करो, घनश्याम को लेकर गुरु महाराज के पास मन्दिर में जाओ। वहाँ जाकर घनश्याम से सत्नाम साक्षी, सत्नाम साक्षी जोर से कहलवाओ, जब तक वह न बोले तब तक आप बोलते जाना। विश्वास रखकर मूरजमल लड़के को लेकर स्वामी टेऊँरामजी के पास मन्दिर में गया और स्वामीजी की आज्ञा अनुसार सत्नाम साक्षी बोलने लगा और घनश्याम से भी कहलवाने लगा। दस-बीस बार बोलने पर

घनश्याम की जबान खुल गयी और वह भी सत्नाम साक्षी बोलने लगा। यह है सत्नाम साक्षी मन्त्र का चमत्कार।

जहाँ-तहाँ, हर जगह, जहां कोई भी न हो वहाँ पर बिना भ्रम, बिना संशय, बिना संदेह, बिना भय और अभय के निराकार गुरु को देखना ही पूर्ण विश्वास कहलाता है। (सम्भव है दूसरे अर्थ भी हों।) ''नाम'' मन्त्र, गुरु का निराकार रूप हैं। जिसका साकार गुरु में पूर्ण विश्वास है, उसका ही निराकार गुरु में पूर्ण विश्वास होता है, उसके तन, मन और वाणी में सत्य भर जाता है।

आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज ने प्रेम प्रकाश सम्प्रदाय (पंथ) की स्थापना की। सम्प्रदाय का नियमों से और नियमों का वेदों से बहुत गहरा सम्बन्ध है, ऐसा बताया जाता है यथा सम्प्रदाय (पंथ) की परिभाषा ॥ सम्यक् प्रदीयत इति सम्प्रदाय॥ परम्परा से गुरु के द्वारा शिष्यों को जो मन्त्र, जो दीक्षा, जो आराधना (उपासना) पद्धति (विधि) और आचार पद्धति (नियम) प्रदान की जाती है, एक मन्त्र, एक दीक्षा, एक उपासना, एक आचार पद्धति, ये सब सम्प्रदाय के अभिन्न अंग हैं। इसको ही पंथ या सम्प्रदाय कहा जाता है। आचार्यजी ने सगुण और निर्गुण दो मन्त्रों का शिष्यों को विधिवत् उपदेश किया था। स्वामी सर्वानन्दजी महाराज ने भी इन दो मन्त्रों का ही शिष्यों को विधिवत् उपदेश किया। स्वामीजी अपने शिष्यों को पूजा और उपासना के लिये आचार्यजी की मूर्ति ही देते थे, अपनी भी देते थे, पर वह केवल रखने के लिये, पूजा-उपासना के लिये नहीं। स्वामीजी ने अपने जीवन-काल में ''इष्ट'', ''गुरु'' और ''नाम'' इन तीनों को नहीं बदला क्योंकि वे जानते थे कि इन तीनों में से एक को भी बदल देने से सब कुछ बदल जायेगा, गुरु परम्परा बिगड़ जायेगी, लक्ष्य की प्राप्ति नहीं

होगी। शिष्य लोग भटक जायेंगे। गुरु द्रोह का बड़ा भारी पाप लगेगा। आचार्यजी ने जो नियम बनाये थे, यथा - सोना न पहनना, सादे कपड़े पहनना, सादा भोजना करना, सत्य का उपदेश करना, धन या कोई और पदार्थ (बिना भोजन के) न अपने लिये, न दूसरों के लिये माँगना। शिष्यों अथवा आम जनता से न माँगना, न सीधा माँगना न उल्टा माँगना। धर्म-कार्यों के लिये भी न माँगना। जादू-टोना न करना। धागा, रक्षा, ताबीज न देना, दवाई न करना, हाथ न देखना, जन्त्र-मन्त्र न करना, झाड़-फूंक न करना, आम जनता में भूतों-प्रेतों, जिनों का भय न डालना। बिना बुलाये किसी के घर में न जाना। अपने आश्रमों के सिवा किसी गृहस्थ के घर में न रहना। स्वामीजी ने इन नियमों का पूरा-पूरा पालन किया।

स्वामीजी किसी को भी शिष्य बनने के लिये नहीं कहते थे। अपने आप शिष्य बनने के लिये आये हुए व्यक्ति से बहुत पूछताछ करते थे, सबसे पहले यह पूछा करते थे कि आपने पहले गुरु किया है या नहीं? अगर वह कहता कि हाँ ! मैने पहले गुरु किया है तो स्वामीजी उसे सत्य का उपदेश देकर समझाते थे कि दूसरा गुरु करना महा पाप है, जो दूसरा गुरु करता है वह गुरु घाती होता है। उसका लोक-परलोक बिगड़ जाता है। अगर किसी कारण से तुम्हें अपने गुरु से नफरत आ गयी है, तो उनके पास मत जाओ, पर दूसरा गुरु मत करो। अपने गुरु के दिये गये मन्त्र का जाप करो, उनकी दी गयी शिक्षाओं का पालन करो तुम्हें फल मिल जाएगा। उनकी कोई माता-बहिन शिष्या बनने के लिये आती थी तो स्वामीजी उससे पूछते थे कि क्या आप माता-पिता, पति, सासु-ससुर इत्यादि घर के बड़ों से आज्ञा लेकर आयी हो? अगर नहीं, तो आज्ञा लेकर आओ। स्वामीजी हमेशा कहा करते थे कि जिसके

घर में माता-पिता, पति, सासु-ससुर जीवित हैं, उन्हें तीर्थ-यात्रा करने की जरूरत नहीं है। बड़ों की सेवा करने से उन्हें सब तीर्थों की यात्रा का फल घर बैठे मिल जायेगा। स्वामीजी हर एक मनुष्य को अपने-अपने कर्तव्य कर्म में लगाते थे। माताओं व बहिनों को विशेषकर उपदेश करते थे कि माताओं-बहिनों को मन्दिरों में, टिकाणों में, कुएँ पर, सन्तों के पास, न दोपहर को, न रात को जाना चाहिये। सत्संग के सिवा भी नहीं जाना चाहिये। बहुत देर तक वहाँ न बैठना चाहिये। स्वामीजी स्वयं भी मर्यादा में चलते थे, और शरण में आये हुए मनुष्यों को भी मर्यादा में रहना सिखाते थे।

आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज जब ब्रह्मलोक जाने लगे तब शिष्यों ने प्रार्थना कर पूछा कि गद्दी पर किसको बैठाया जाये ! तब आचार्यजी ने केवल संकेत किया। (क्योंकि त्रिगुणात्मक संसार से ऊपर उठे हुए महापुरुषों की गद्दियाँ कपास-रूई से बनी हुई नहीं होती हैं, उनकी गद्दियाँ ही निराली होती हैं, इसलिये महापुरुष गद्दी के विषय में कभी सोचते ही नहीं।) संकेत का मतलब था कि प्रेम प्रकाश मण्डल के साधुओं को अधिकार है कि वे सोच-विचार कर जिसको योग्य समझें उसे नियुक्त करें। हालांकि सभी शिष्य थे, फिर भी आचार्यजी ने किसी विशेष व्यक्ति के लिये आदेश नहीं दिया। स्वामी सर्वानन्दजी महाराज ने भी किसी विशेष व्यक्ति को गद्दी पर बैठाने के लिये नहीं कहा, पर वे कह गये थे कि प्रेम प्रकाश मण्डल को अधिकार है कि वह किसी योग्य व्यक्ति को नियुक्त करे॥ महाजनो येन गतः स पन्था॥ महाभारत के वचनों के अनुसार, आचार्यजी की हरेक परम्परा को ज्यों का त्यों बनाये रखने में स्वामी सर्वानन्दजी महाराज ने कोई कसर नहीं छोड़ी। जो शिष्य अपने गुरु की परम्परा को ज्यों का त्यों बनाये रखता

है, उसके लिये ही कहा जाता है कि गुरु की ज्योति शिष्य में आ गयी या गुरु अपनी ज्योति शिष्य में डाल गये।

स्वामीजी प्रायः यात्रा में रहते थे, जहाँ-जहाँ भी रहते थे तो वहाँ-वहाँ के प्राकृतिक दृश्य (नजारे) प्रतिदिन प्रातः-सायं देखने जाते थे। नद-नदियों, जंगल-झाड़ियों, पर्वत-झीलों, सागर-सरोवरों, बाग-बगीचों इत्यादि का जहाँ जैसा दृश्य होता था वहाँ स्वामीजी टहलने जाते थे। हरिद्वार से तो स्वामीजी का बहुत गहरा लगाव था, प्रति वर्ष में दो-तीन बार वे हरिद्वार जाते थे, वहाँ श्री गंगाजी के पावन तट पर एकान्त में घंटों तक जाकर बैठते थे। यहाँ तक कि स्वामीजी कह गये थे कि मेरा पार्थिव शरीर श्री गंगाजी को अर्पण किया जाये। स्वामीजी की पवित्र स्मृति को अमर बनाये रखने के लिये स्वामी शान्तिप्रकाशजी महाराज (अध्यक्ष, प्रेम प्रकाश मण्डल) प्रेम प्रकाश मण्डल के सन्तों और प्रेमियों ने मिलकर हरिद्वार में प्रेम प्रकाश आश्रम के सामने श्रीगंगाजी पर "स्वामी सर्वानन्द घाट" का निर्माण करवाया। स्वामी सर्वानन्दजी महाराज के ८७वें जन्म-दिवस पर सोमवार (एकादशी) दिनांक १७-१०-८३ को उस घाट का उद्‌घाटन किया गया। स्वामीजी को एकान्त और प्राकृतिक दृश्य सबसे अधिक प्यारे लगते थे।

सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज के जन्मदिन शनिवार को स्वामीजी ने एकादशी, अमावस्या इत्यादि की तरह पुण्य तिथि मान लिया था, इसलिये वे प्रत्येक शनिवार के दिन उपवास और मौन व्रत रखते थे। स्वामीजी ने गुरु कृपा से अपने मन और इन्द्रियों को वश में कर लिया था, इसलिये वे किसी से भी कभी भी हँसी-मजाक या फालतू बातें (जैसे कि आप कहाँ रहते हो, कहाँ से आये हो, कौनसा धन्धा-व्यापार करते हो, कितने लड़के हैं, कितनी लड़कियाँ हैं, वे कहाँ-कहाँ

रहते हैं, आप की पत्नी कहाँ है, आपका पता क्या है, इत्यादि) नहीं करते थे। क्योंकि उन्हें यह मालूम था कि हंसी, मजाक और फालतू बातें करने से शिष्य और आम लोग मर्यादा से निकल जायेंगे। सबको मर्यादा सिखाने के लिये वे स्वयं मर्यादा में रहते थे। हालांकि (यद्यपि स्वामीजी किसी से भी कुछ भी नहीं कहते थे फिर भी सभी लोग मर्यादा में रहते थे, किसी को भी स्वामीजी से बोलने का साहस नहीं होता था।

स्वामीजी प्रायः कहा करते थे कि अगर भोजन करना ही है तो समय पर करो, यदि सत्संग या अन्य कार्य करने ही हैं तो समय पर करो, अगर आराम करना ही है तो समय पर करो। वे प्रत्येक कार्य समय पर करने का उपदेश देते थे। स्वामीजी स्वयं समय के पाबंद थे। सत्संग समाप्त होते ही वे विशेषकर माताओं को जल्दी घर जाने का आदेश देते थे। स्वामीजी अधिकतर अपनी यात्रा गाड़ी और बस से करते थे, सादा भोजन करते थे, सादे कपड़े पहनते थे, देश-विदेश की यात्रा करने पर भी स्वामीजी ने अपने सादे जीवन को नहीं बदला।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ

॥ श्री सत्नाम साक्षी ॥

॥ साधु संग ॥

दोहा :- सन्त राम में भेद नहिं, सन्त राम स्वरूप ।
कह टेऊँ रट राम को, भये राम के रूप ॥

साधुओं की महिमा का वर्णन करते हुए प्रेम प्रकाश सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज बतलाते हैं कि "राम और सन्त में कोई भी भेद नहीं है।"

श्लोक :- साधवो हृदयं मह्यं, साधुनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

भगवान् स्वयं अपने श्रीमुख से कहते हैं कि साधु मेरा हृदय (दिल) हैं, और मैं साधुओं का दिल हूँ। वे मेरे सिवा और किसी को नहीं जानते, मैं भी उनके सिवा और किसी को नहीं जानता। भगवान का दिल होने के कारण साधु लोग सब कुछ करने में समर्थ होते हैं। सारे संसार को बदल सकते हैं। महर्षि गौतमजी ने युग को ही बदल दिया था। साधुओं की शक्ति एवं महिमा अपार बताई गयी है। जैसे भगवान दुर्लभ हैं, वैसे साधु भी दुर्लभ हैं।

श्लोक :- वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ गीता ७/१९

श्लोक :- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥ गीता ४/८

जिन साधुओं की रक्षा के लिये स्वयं श्री भगवान् को अवतार लेना पड़ता है, वे साधु दुर्लभ बताये गये हैं। साधु, सन्त, महात्मा, सज्जन

इत्यादि पर्यायवाची शब्द हैं। प्रहलाद के लिये भगवान् ने नृसिंहजी का अवतार लिया था। तो क्या प्रहलादजी साधु थे? ध्रुवजी साधु थे? साधु किसी भी भेष में मिल सकते हैं। पर साधुओं को पहिचानना बड़ा कठिन है। जैसे कसौटी के बिना सोना परखा नहीं जा सकता, वैसे धर्म शास्त्रों के बिना साधु परखे नहीं जा सकते। जो लोग साधुओं के माध्यम से अपना उद्धार करना चाहते हैं उन लोगों को साधु संग से पहले धर्म शास्त्र को बड़े ध्यान से पढ़ना चाहिये।

चौ.:- सुख-दुःख, पाप-पुण्य, दिन-राती, साधु-असाधु कुजाति-सुजाति।
भलेउ पोच सब विधि उपजाए, गनि गुन दोष वेद बिलगाए।
कहहिं वेद इतिहास पुराना, विधि प्रपंच गुन अवगुन साना॥
तेहिं ते कुछ गुन दोष बखाने, संग्रह त्याग न बिन पहिचाने ॥

दोहा :- जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहर वारि विकार ॥

सारा विश्व ब्रह्माजी का बनाया हुआ है, इस विश्व में देव, दानव, मानव, पशु-पक्षी, कीट-पतंग इत्यादि जड़-चेतन, सजीव-निर्जीव,जो कुछ भी है, वह सबका सब गुण-दोषों से भरपूर है। ठीक-ठीक पहिचाने बिना किसीको भला-बुरा कहना उचित नहीं है। वेदों, पुराणों एवं इतिहासों ने प्रत्येक पदार्थ के गुण-दोषों एवं स्वभावों का पूरा-पूरा वर्णन किया है।

साधु कौन है, असाधु कौन है? यह सवाल विशेषकर वेदों, पुराणों, इतिहासों और धर्म शास्त्रों को पढ़ने, सुनने एवं जाननेवाले ही पूछा करते हैं। इसलिये उन्हें सही रास्ता मिल जाता है। बाकी आम लोग जो शास्त्रों को नहीं जानते हैं और न पूछते ही हैं इसलिये भटक जाते हैं।

लोकोक्तिः- पानी पीवो छान के, गुरु करो पछान के।

जो कोई भी साधुओं का संग करना चाहें तो उसे सर्वप्रथम ''साधु'' कौन है, इस विषय पर विचार करना होगा। साधु कौन है, असाधु कौन है, यह ज्ञान कौन बतायेगा? अगर कहा जाये कि मनुष्य को अपने आप इस विषय की जानकारी हो जायेगी, तो दुनिया के सभी ज्ञान ब्रह्म ज्ञान तक प्रयास करते रहने पर अपने आप प्राप्त हो जायेंगे। फिर गुरु अथवा साधु संग की कोई भी आवश्यकता नहीं रहेगी। साधु कौन है, असाधु कौन है, आखिर यह ज्ञान कहाँ से मिलेगा? जहाँ से और जिससे यह ज्ञान मिले पहले तो उसकी खोज करनी चाहिये । यह भी कैसे जाना जाये और किसके द्वारा जाना जाये कि अमुक व्यक्ति साधु-असाधु को पूरा-पूरा पहचान सकता है ? साधु शब्द जितना सरल है, उतना ही गम्भीर भी है। साधारण लोग इस गहराई में नहीं जाते, क्या सब कुछ अपने आप सोचना और खोजना पड़ेगा? यमराजजी भी नचिकेता को कहते हैं कि, कठोपनिषद ॥ उतिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥ उठो, जागो और साधुओं के पास जाओ, जिन यमराजजी के द्वारा नचिकेताजी को आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है, क्या वे यमराज साधु नहीं हैं? यदि साधु हैं तो फिर नचिकेता को साधुओं के पास क्यों भेजा जा रहा है? बड़ी जटिल समस्या जान पड़ती है।

दोहा :- गुरु कहे भज साधु को, साधु कहे गुरु पूज।
अरस परस के मेल से, भई अगम की सूझ॥

उपरोक्त दोहे में बताया गया है कि गुरु एवं शिष्य दोनों मिलकर शिष्य को अगम का ज्ञान कराते हैं और उसका उद्धार कर लेते हैं। गुरु और साधु दोनों शब्दों का असली अर्थ क्या है ? असली अर्थ को समझने का प्रयास करना चाहिये, तब ही सफलता मिल सकती है।

ोहा :- कहो कृपा कर साधु के, लच्छन श्री गुरु देव ।
जाहिं निरख हित आपने, करूँ भली विधि सेव ॥

किसी शिष्य ने अपने गुरुदेव से पूछा कि मेरा उद्धार कैसे होगा? शाष्य की जिज्ञासा देखकर गुरु ने कहा कि जाओ, जाकर साधुओं का ंग करो तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। आज्ञा पाकर शिष्य चला गया। ाधुओं की खोज करता रहा। कई साधुओं के दर्शन करने के बाद भी से कुछ समझ में नहीं आया। बराबर बारह महीनों के बाद वह गुरु ़ पास लौटकर आया, गुरु को समाचार बताकर वह कहने लगा कि ई प्रकार के साधुओं को देखा पर मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। योंकि आपसे साधुओं के लक्षणों के विषय में कुछ भी पूछकर नहीं या था, इसलिये भटकता रहा। गुरु के पूछने पर शिष्य कहने लगा कि ने कई साधु देखे। कई गेरुए, लाल, पीले, नीले, सफेद इत्यादि वस्त्र हने हुए देखे । कई मुण्ड मुड़ाये देखे। कई जटाओं वाले देखे। कई स्मी लगाये देखे। कई नंगे देखे। कई केवल एक लंगोटी पहने देखे। ई तिलक लगाये और मालाएँ पहने देखे। कई जंगलों में, गुफाओं में, दराओं में, कई पर्वतों पर, कई पेड़ों के नीचे, कई नदियों, सरोवरों ौर सागर के किनारे पर तपस्या करते देखे। कई स्वादिष्ट भोजन करते खे। कई रूखे-सूखे टुकड़े चबाते देखे। कई फल-फूल खाते देखे। ई दूध पीते देखे। कई व्रत-उपवास रखते देखे। कई राम-नाम, भक्ति र्म, उपासना, ज्ञान, योग, सत्य-धर्म और वेदान्त इत्यादि के विषयों र प्रवचन करते देखे। कई राम, कृष्ण, शिव, नारायण, गणेश, विष्णु, र्गा इत्यादि देवी-देवताओं की पूजा करते देखे। कई गुरुओं की महिमा ते देखे। कई तीर्थयात्रा करते देखे। कई राजाओं, महाराजाओं की तरह खे। कई दवाइयाँ करते देखे। कई मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, धागा-टोना,

ताबीज, झाड़-फूंक इत्यादि करते देखे। कई हस्तरेखाएँ और ज्योति बताते देखे। कई गद्दी प्राप्त करने के चक्कर में पड़े देखे। कई यज्ञ, हवन करते देखे। कई बड़ी-बड़ी सत्संग सभाएं, बड़े-बड़े सम्मेलन करते मेले लगाते देखे। कई मन्दिर आश्रम बनाते देखे। कई धर्मशालाएँ नारीशालाएँ, गौशालाएँ, विद्यालय, पाठशालाएँ, वृद्धाश्रम, अस्पताले इंत्यादि चलाते देखे। कई बाढ़-पीड़ितों अकाल-पीड़ितों और गरीबे की सहायता इत्यादि धर्म कार्यों के लिये चंदा करते देखे। कई वेद मर्यादाओं का पालन करते देखे। कई ब्राह्मणों के कर्म करते देखे। कई व्यापारियों के कर्म करते देखे। कई रास रचाते देखे। कई साधारण लोगो और दूसरों के शिष्यों को प्रेम-प्यार देकर, लोभ-लालच देकर, अपनी विद्या का चमत्कार दिखाकर, अपनी महिमा बताकर आडम्बर दिखाकर जिससे वे लोग शिष्य बनें और दान करें, ऐसी कथाएँ भजन सुनाकर शिष्य बनाने के चक्कर में पड़े देखे। सब कुछ बताकर शिष्य कहने लगा कि मैंने कई भिन्न-भिन्न आचार-विचार और स्वभाव वाले साधु देखे पर मैं ठीक-ठीक समझ न सका कि साधु किसको कहते हैं। गुरुदेव आप तो सर्वज्ञ हैं, कृपा कर मुझे साधुओं के लक्षण बतायें तो मैं उनकी सेवा कर अपना उद्धार कर सकूं।

शिष्य का सारा समाचार सुनकर गुरु बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे कि तुम्हारे विचार बहुत अच्छे हैं, परन्तु मैंने तुम्हें उन साधुओं के लक्षण देखने के लिए नहीं कहा था, मैंने तो सत्य का संग करने के लिये कहा था (साधु का अर्थ है सत्य), तुम मेरे शब्दों को उल्टा समझ बैठे, फिर भी तुमने जो किसी साधु से नहीं पूछा यह काम तुमने बहुत ही अच्छा किया। तुम्हारी बुद्धि की परीक्षा लेने के लिये ही मैंने तुम्हें साधुओं के लक्षण नहीं बताये थे। जो कुछ तुमने बताया वह सब ठीक

है। इन सबको साधु कहते हैं। वे जो-जो कर्म कर रहे थे उन सबको शुभ कर्म कहते हैं।

श्लोक:- यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः।
तदर्थं कर्मकौन्तेय मुक्तसंगः समाचार ॥ गीता ३/९

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मों के बारे में समझाकर कहा कि जितने शुभकर्म हैं वे अगर लोक-परलोक के भोगों को भोगने के लिये किये जाते हैं तो वे कर्म बन्धन का कारण बन जाते हैं, अगर यज्ञ के लिये किये जाते हैं तो वे कर्म मुक्ति के कारण बन जाते हैं।

दोहा - साधू साधू सब बड़े अपनी-अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, ते माथे के मोर॥

हरेक साधु अपने-अपने स्थान पर बड़ा है, पर शब्द को जानने वाले और शब्द को परखने वाले साधु बिल्कुल दुर्लभ हैं। (शब्द किसको कहते हैं, उसकी पहचान क्या है, यह अलग विषय है) बाहर के रंग-ढंग, चाल-चलन, मान-प्रतिष्ठा को देखकर किसी को साधु समझ लेना, ये साधारण लोगों के विचार हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि साधारण लोग अनपढ़ होते हैं। आम लोग भी खूब पढ़े-लिखे होते हैं, पर वे धर्म शास्त्र को नहीं जानते इसलिये वे लोग जिस किसी को साधु मान लेते हैं। संस्कृत, अंग्रेजी इत्यादि भाषाओं को जाननेवाला, धर्म शास्त्र को नहीं जान सकता। आम लोगों में यह विश्वास है कि संस्कृत, अंग्रेजी जाननेवाला और प्रत्येक विषय पर प्रवचन देनेवाला ही साधु होता है। परन्तु यह भ्रम है, और अन्धविश्वास है। जैसे B.A., M.A. इत्यादि पास करने से कोई डॉक्टर नहीं बन सकता, पर डॉक्टर बनने के लिए उसे अलग से डॉक्टरी की पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। वैसे ही

धर्म को जानने के लिये अलग से धर्मशास्त्रों का अध्ययन, अनुशीलन करना पड़ता है। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, सिंधी और गुजराती इत्यादि तो भाषाएँ हैं। धर्मशास्त्र सभी भाषाओं से सर्वथा भिन्न है। कोरी भाषाओं को जानने वाला धर्म तत्त्व को कभी भी नहीं जान सकता। धर्म तत्त्व को जाने बिना "साधु" शब्द का अर्थ लगा पाना सर्वथा असम्भव है। धर्म शास्त्रों के गुप्त रहस्यों को जानने वाला ही साधु शब्द का अर्थ समझ सकता है।

शिष्य ने गुरु से साधुओं के लक्षण जानने के लिये प्रार्थना की थी, अब यह शंका उत्पन्न होती है कि शिष्य के द्वारा जिस गुरु से साधुओं के लक्षण पूछे जा रहे हैं, क्या वह गुरु साधु नहीं है? जो लोग स्वार्थी हैं वे तर्क-वितर्क से बहुत घबराते हैं, पर तर्क-वितर्क किये बिना किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचा नहीं जा सकता। जैसे शूरवीर तीरों और तलवारों से नहीं डरते हैं, वैसे ही बुद्धिमान लोग भी तर्क-वितर्क से नहीं डरते। जो लोग बिना किसी सहारे के सीधे भगवान् श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण या किसी देवी-देवता के भक्त बन जाते हैं, उन लोगों को भगवान स्वयं सही रास्ता बता देते हैं।

चौ. :- सन्त विशुद्ध पुनि मिलहिं तेही।
राम कृपा कर चितवहिं जेही॥

पर जो लोग "साधु" संग के माध्यम से अपना उद्धार करना चाहते हैं, उन लोगों को बिल्कुल सावधान रहना चाहिये।

साधु लोग किसी शहर में जाते हैं तो जिन लोगों के गुरु हैं, वे लोग एक-दूसरे को यह सूचना देते हैं कि गुरुजी पधारे हैं। जिन लोगों के वे गुरु नहीं हैं वे यह कहते हैं कि साधु लोग पधारे हैं। जैसे एक ही

व्यक्ति किसी का पिता तो किसी का भाई तो किसी का पति इत्यादि होता है। वैसे ही एक ही व्यक्ति किसी के लिये गुरु तो किसी के लिये साधु है। शिष्य के लिये जो गुरु है वह ही साधु है। पर शिष्य के लिए तो गुरु ही भगवान् है। फिर भी यदि शिष्य गुरु से साधुओं के लक्षण पूछता है, तो क्यों पूछता है? इसलिये साधु संग करने से पहले इस विषय पर अवश्य ही विचार करना चाहिये। लड़की का विवाह जरूर किसी लड़के से होगा, सम्बन्ध जोड़ने से पहले लड़के के लक्षण जरूर पूछे जाते हैं, पर जब लड़की का विवाह कर दिया गया, फिर लड़के के (जो कि जवाई बन चुका है) लक्षण किसी से पूछना कहाँ तक उचित है ! जब तक गुरु नहीं किया गया है तब तक साधु के लक्षण जरूर पूछने चाहिये, परन्तु गुरु मान लेने के बाद साधु के (जो कि गुरु बन चुका है) लक्षण पूछना कहाँ तक उचित है। शिष्य के लिये तो सब कुछ गुरु ही है, फिर शिष्य अपने गुरु की सेवा कर अपना उद्धार क्यों नहीं कर लेता? अगर साधु सेवा से ही उद्धार होना है तो फिर गुरु करने की क्या जरूरत है? यदि यह कहा जाये कि गुरु ही साधुओं के लक्षण बता सकता है, तो फिर गुरु करने के बाद गुरु से साधुओं के लक्षण जानकर गुरु को छोड़कर उसके बदले साधुओं की सेवा में लग जाना चाहिये। जैसे लड़की तब तक माता-पिता की सेवा करती है, जब तक उसका विवाह नहीं हुआ है। विवाह होने के बाद वह लड़की माता-पिता को छोड़ कर पति की सेवा में लग जाती है। जैसे लड़की के लिये माता-पिता से अधिक बड़ा एवं पूज्य पति है, वैसे ही शिष्य के लिये भी गुरु से अधिक पूज्य साधु होना चाहिये। परन्तु ऐसा कहीं भी देखा नहीं गया है। चाहे कितनी भी अटकलें क्यों न लगायी जाये पर शिष्य के लियें जो गुरु है वह ही साधु है। मानना पड़ेगा कि साधु शब्द का

अर्थ कुछ और ही है। साधारण लोग जिनको साधु समझते हैं, वह तो एक साधु समाज है। सोच-विचार कर चलने वाला ही अपने लक्ष्य पर पहुँचता है।

चौ. :- सन्तन के लछन रघुवीरा, कहहु नाथ भव भंजन भीरा।

देवर्षि नारदजी के द्वारा भगवान् श्री रामजी से साधुओं के लक्षण पूछे जा रहे हैं। साधुओं का संग तो संसार के बन्धनों से छुटकारा पाने के लिये किया जाता है। एक तरफ सब तत्त्वों को जानने वाले नारदजी स्वयं साधु हैं, दूसरी तरफ संसार के समस्त बन्धनों को काटने वाले श्री रघुनाथजी स्वयं भगवान् हैं। नारदजी और भगवान दोनों जिज्ञासुओं के उद्धार करने में समर्थ हैं। फिर भी नारदजी के द्वारा श्रीरघुनाथजी से सन्तों के लक्षण क्यों पूछे जा रहे हैं? जिन श्रीराम और श्रीकृष्ण के पवित्र नामों का जाप, स्मरण एवं कीर्तन करने वालों को हम लोग साधु कहते हैं, तो क्या वे राम-कृष्ण स्वयं साधु नहीं हैं? क्या नारद भी साधु नहीं हैं? तो फिर साधु किसको कहते हैं? साधु शब्द का अर्थ और भी जटिल होता जा रहा है।

दोहा :- मैं मांगत नहिं और कुछ, सन्त दरस हरि देह।
कह टेऊँ दर्शन करे, सफल करूँ तन एह ॥

स्वामी टेऊँरामजी महाराज, जिनके हम लोग शिष्य हैं, केवल स्वामी टेऊँरामजी की मण्डली के कहलाते हैं, और प्रेम प्रकाशी कहलाते हैं, जब हमें ही आम लोग साधु कहते हैं, तो क्या स्वामी टेऊँरामजी स्वयं साधु नहीं थे? या उस समय दूसरे साधु नहीं थे? अगर थे तो फिर स्वामीजी साधुओं के दर्शन के लिये भगवान् से प्रार्थना क्यों कर रहे हैं?

श्लोक :-जटिलो मुण्डी लुञ्चित केशः, काषायाम्बर बहुकृत वेष।
पशयन्नपि न च पशयति मूढउदर निमित्तं बहुकृत वेषः ॥

श्लोकः-काषाय ग्रहणं कपालभरणं, केशावलीलुञ्चनं,
पाखण्डव्रत भस्मचीवरजटा, धारित्वमुन्मत्तता।
नग्नत्वं निगमागमादिकविता, गोष्ठी सभामण्डले।
सर्वं चोदर पूरणार्थनटनं, न श्रेयसां कारणम् ॥

साधु शब्द का सही अर्थ क्या है? इस विषय पर प्राचीनकाल से विचार होते चले आ रहे हैं। सत्यवादी ऋषि लोग लिखते हैं कि गेरुए वस्त्र पहिनना, कपाल धारण करना, केशों को नोचना, पाखण्डव्रत करना, भस्म लगाना, कौपीन (लंगौटी) पहिनना, जटा रखना, उन्मत हो जाना, नंगे रहना, सिर के बाल मुंड़ाना, बड़ी-बड़ी सत्संग सभाओं में, सम्मेलनों में वेदों-पुराणों, शास्त्रों की कथाएँ सुनाना, विचार-गोष्ठी करना, कविताएँ, भजन सुनाना, ये सब कर्म जिनको आम लोग शुभ कर्म कहते हैं, पर बुद्धिमान लोग इन कर्मों को केवल उदर पूर्ति (पेट भरने) के साधन समझते हैं वास्तविक कल्याण के कारण नहीं हैं। महाभारत के इन वचनों के अनुसार, चर्पट मंजरी के वचनों के अनुसार उपरोक्त लक्षणों वाले मनुष्य भी साधु नहीं हैं, तो भला साधु किसको समझना चाहिये। साधुओं को पहिचानने के लिये ज्ञान की आँखें बहुत आवश्यक हैं। क्योंकि मानवता, मुमुक्षुता और महापुरुषों का संग, ये तीनों दुर्लभ हैं, और देव की कृपा बिना नहीं मिल सकते। सभी बुद्धिमानों का एक मत है। वे इन बाहर के कर्मों को केवल कला और प्रदर्शन मानते हैं। जो लोग स्वयं पेट भरने और धन, मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के चक्कर में लगे रहते हैं, ऐसे लोगों से अपने उद्धार (मुक्ति) की आशा रखना व्यर्थ है।

पानी में मिलाये दूध को तो हंस ही अलग कर सकता है, हालांकि दूध के स्वाद को तो बिल्ली का बच्चा भी जानता है, पर उसमें पानी से दूध को अलग करने की शक्ति नहीं है। पानी से दूध को अलग करने की शक्ति तो हंस में ही होती है। साधु-असाधु भी दूध एवं पानी की तरह आपस में मिले रहते हैं, असाधुओं से साधुओं को अलग करने की शक्ति केवल धर्मशास्त्रों के गुप्त रहस्यों को जाननेवालों में ही होती है।

दोहा:- सुत दारा और लक्ष्मी, पापी को भी होय ।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥

दुर्लभ का अर्थ तो सब जानते हैं, पर आजकल साधुओं के दर्शन तो जहाँ-तहाँ होते रहते हैं। चाहे उनको न्योता (निमन्त्रण) दो या न दो पर वे बिना बुलाये अपने आप भक्तों अथवा परिचित लोगों के पास चले जाते हैं। आजकल साधुओं की कोई कमी नहीं है और हरि कथाएँ भी जहाँ-तहाँ सुनने को मिलती रहती हैं। परन्तु श्री तुलसीदासजी तो साधु-संग और हरि कथा इन दोनों की दुर्लभता बताते हैं। साधु किसको समझना चाहिये, इस विषय पर बहुत सोचना चाहिये। नहीं तो अन्धविश्वासी बन जायेंगे। अन्धविश्वास एक दलदल के समान है, अन्धविश्वास में फँसे मनुष्य का निकलना बड़ा कठिन है।

कवित्त :- साधु नहिं कहो ताहिं, घर छोड़ बन जाय।
साधु नहिं कहो, जाय मन्दिर बनावे हैं।
साधु नहिं कहो ताहिं, मुण्ड को मुंडावे जोई,
साधु नहिं कहो, जटा जट को रखावे हैं।
साधु नहिं कहो ताहिं, भेख बहु धारे जोई,
साधु नहिं कहो, छाप तिलक लगावे हैं।

कहे टेऊँ सुनो जन, कहुं मैं वचन सत,
साधन को साधे जोई, साधु सो कहावे हैं।

कवित्त :- साधु नहिं कहो ताहिं, कलंगी को राखे सिर,
साधु नहिं कहो, छत्र चंवर झुलावे हैं।
साधु नहिं कहो ताहिं, दूध का आहार करे,
साधु नहिं कहो, जोई कंद मूल खावे हैं।
साधु नहिं कहे ताहिं, आग से तपावे तन,
साधु नहिं कहो, छार तन में रमावे हैं।
कहे टेऊँ सुनो जन, कहूं मैं वचन सत,
साधन को साधे जोई, साधु सो कहावे हैं।

कवित्त :- साधु मत कहो ताहिं, भूमि पै शयन करे,
साधु मत कहो, जोई भीख मंग खावे हैं।
साधु मत कहो ताहिं, भांग मद पीवे हुका
साधु मत कहो, गांजा चरस उड़ावे हैं।
साधु मत कहो ताहि, चौरासी साधन साधे,
साधु मत कहो, ऋद्धि सिद्धि जो चलावे हैं।
कहे टेऊँ सुनो जन, कहूं मैं वचन सत,
साधन को साधे जोई, साधु सो कहावे हैं।

साधुओं के विषय में प्रेम प्रकाश ग्रंथ में भी वे ही बातें बतायी गयी हैं जो धर्मशास्त्रों में पहले ही बतायी गयी हैं। धर्मशास्त्रों और स्वामी टेऊँरामजी महाराज के मत अनुसार साधु उसको समझना चाहिये जो साधनों को साधता है। सत्य ही सब से उत्तम साधन है। सत्य के भी चौदह रूप बताये गये हैं। सत्य की साधना करने वाले को ही साधु कहा जाता है। बाहर के लक्षणों से कोई भी साधु तो बन सकता है, पर साधुता

नहीं आयेगी। जिस मनुष्य में साधुता हो उसका संग करना चाहिये। साधुओं की पहचान के लिये धर्म शास्त्रों को अवश्य पढ़ना चाहिये।

साधुओं की पहचान के विषय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्णजी से पूछा था कि जिस मनुष्य की बुद्धि स्थिर हो चुकी है, ऐसा व्यक्ति कैसे बोलता है? कैसे चलता है? कैसे उठता, बैठता और रहता है? परन्तु अर्जुन ने यह नहीं पूछा कि वह कितना पढ़ा-लिखा होता है, उनके कितने आश्रम हैं, उसने विदेश की यात्रा की है या नहीं, उनके कितने शिष्य हैं, उनके पास कितना धन-सम्पत्ति है, क्या वे चमत्कार दिखाते हैं या नहीं। अर्जुन धर्मशास्त्र को जानता था इसलिये उसने भगवान से साधुओं के चरित्र के बारे में ही पूछा था।

गीता हमें सिखाती है कि साधुओं का संग करने से पहले उनके चरित्रों को ध्यान से देखो। गीता हमें जगाती है, गीता हमें अन्धविश्वास से बचाती है, गीता हमें सत्य की ओर ले जाती है, गीता हमें सावधान करती है कि किसी के रंग-ढंग, मान-प्रतिष्ठा, आडम्बर, चमत्कार इत्यादि को देखकर मत भूलो, क्योंकि मान-प्रतिष्ठा चरित्र नहीं है। मान-प्रतिष्ठा आदि को चरित्र समझना बड़ी भूल है। गीता हमें सिखाती है कि दूसरे लोगों की परीक्षा लेने के बदले अपनी परीक्षा लो, अपने चरित्र को देखो, अपनी गलतियों को सुधारने की कोशिश करो। सत्य को अपने जीवन में उतारने का प्रयास (कोशिश) करो, जिसके पास सत्य है, वह ही साधु है। सत्य पर किसी एक व्यक्ति या किसी एक राष्ट्र का अधिकार नहीं है, सत्य पर सबका अधिकार है। सत्य बोलना बहुत महँगा पड़ता है, मीठा बोलना बहुत सस्ता पड़ता है।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ

॥ श्री सत्नाम साक्षी ॥

॥ स्वामी सर्वानन्द बैंक ॥

(अध्यक्ष, पूज्यपाद आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज)

विशेष विवरण के साथ

स्वामी सर्वानन्द बैंक (जिसके अध्यक्ष स्वयं आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज हैं) में अपने बहुमूल्य परम-पवित्र नाम को जमा कराकर अपने और अपने परिवार का भविष्य उज्ज्वल बनायें। इस बैंक के लिये सदस्य बनने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। केवल इतना करना है कि प्रतिदिन जितना जप करें वह बैंक के अध्यक्ष आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज को अवश्य बता दें।

दोहा:- कह टेऊँ हरि नाम जप, भूलो ना क्षण एक॥ प्रेम प्रकाश ग्रंथ
चौ. मंगल भवन अमंगल हारी, उमा सहित जेहिं जपत पुरारी॥
चौ. महा मन्त्र जेहिं जपत महेसू, कासी मुकिति हेतु उपदेसू॥
चौ. जान आदि कवि नाम प्रतापू, भयउ सुद्ध कर उल्टा जापू॥
चौ. सहस नाम सम सुनि सिव बानी, जपत जेइं पिय संग भवानी॥
चौ. नाम जीहं जपि जागहिं जोगी, विरति बिरंचि प्रपंच वियोगी॥
चौ. जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ, नाम जींह जपि जानहिं तेऊ॥
चौ. सुमिरि पवन सुत पावन नामू, अपने बस कर राखेउ रामू॥
चौ. साधक नाम जपहिं लय लाएं, होहिं सिद्धि अणिमादिक पाएं॥

दोहा :- नाम जपो मन वस करो, ये ही बात है तंत ॥
काहे को पढ़ पच मरो, कोटिन ज्ञान ग्रंथ ॥ - सन्त वाणी

श्लोक :- वेदाभ्यासो हिं पञ्चधा, बिहितः अध्ययनं
विचारोऽभ्यसनं जपोऽध्यापनञ्च ॥
वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः
तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥ - धर्मशास्त्र

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ॥ - गीता
यज्ञानां जप यज्ञोऽस्मि ॥ - गीता

नाम के विषय में विशेष जानकारी, (समझने की बातें) सत्‌युग, त्रेतायुग द्वापरयुग और कलियुग, चाहे कोई भी युग हो। वैदिक काल या पौराणिक काल, चाहे कोई भी काल हो। नाम के विषय में किसी ने जप करने के लिये कहा है, किसी ने भजन करने के लिये कहा है, किसी ने स्मरण करने के लिये कहा है, किसी ने कीर्तन करने के लिए कहा है, वैसे देने के लिये तो बहुत ही प्रमाण हैं पर विस्तार भय से नहीं दिये जा रहे हैं। फिर भी गीता, रामायण इत्यादि शास्त्रों के जो कुछ प्रमाण दिये गये हैं वे काफी ही नहीं परन्तु ठोस प्रमाण हैं।

उपरोक्त प्रमाणों को कोई भी शास्त्र मर्मज्ञ काटने में समर्थ नहीं हो सकता। वेदों, पुराणों, इतिहासों, सन्तों की वाणी और सभी शास्त्रों से एक ही आवाज आती रहती है। जप करो, कीर्तन करो, स्मरण करो, भजन करो। पवित्र नाम को कागजों पर लिखकर खाता खोल कर बैंकों में जमा कराने के लिये किसी ने भी नहीं कहा है यदि ऐसी बात है तो फिर आजकल पवित्र नाम को बैंकों में जमा कराने के लिये क्यों प्रचार किया जा रहा है ? यदि यह कहा जाये कि आम लोगों से किसी न किसी

प्रकार नाम जपाया जाये? आम लोगों में नाम के लिये श्रद्धा-प्रेम बढ़ाने के लिए ऐसा किया जा रहा है क्योंकि कलियुग है। कलियुग में एकान्त में बैठकर या घर में रहकर जप करना बड़ा कठिन है। इसलिए यह सरल उपाय खोजा गया है, तो यह बात भी ठीक नहीं लगती क्योंकि आम लोग तो हैं ही नहीं। कोई किसी का शिष्य है तो कोई किसी का शिष्य है। सब सन्तों ने अपने-अपने शिष्यों को "नाम" के विषय में समझा दिया है। अत: आम लोगों का तो सवाल ही नहीं उठता और कलियुग भी एक नहीं पर न जाने कितने कलियुग बीत गये हैं। पवित्र नाम को लिखकर बैंकों में जमा कराने के लिये कोई भी प्रमाण नहीं मिलता। जितने कलियुग बीत गये हैं उनका हम सभी को सम्भव है पूरा ज्ञान न भी हो, पर जो कलियुग चल रहा है, जिसमें हम सभी जी रहे हैं, कहते हैं कि इस कलियुग को भी पाँच हजार वर्ष बीत गये हैं। इस कलियुग में भी गोस्वामी तुलसीदासजी, सन्त कबीरदासजी, भक्त सूरदासजी, मीराबाईजी, आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी, स्वामी सर्वानन्दजी, इत्यादि अनेक सन्त-महात्मा तथा विद्वान्-आचार्य हो गये हैं, पर किसी ने भी पवित्र नाम को बैंकों में जमा कराने के लिये आज्ञा नहीं दी है। अगर कहीं "लिखना" यह शब्द आया भी होगा तो भी उसका अर्थ कुछ और ही होगा। (जैसे:- यह बात दिल पर लिख दो) फिर भी बैंकों में जमा कराने का अर्थ नहीं निकलता, क्या पहले वाले शब्द-कोषों में "लिखना" यह शब्द नहीं था, पहले वाले सन्तों-महात्माओं को "लिखना" यह शब्द मालूम न था? अथवा वे लोग इस उपाय को नहीं जानते थे? ऐसी बात नहीं है। हमारे पूर्वज सब कुछ जानते थे। आज से लगभग सौ (१००) वर्ष पहले पूरे भारत के लोगों में कितनी सत्यता थी! मनुष्य का मनुष्य के प्रति कितना स्नेह, सहयोग,

सद्भाव, सम्मान-सत्कार था, कितनी मर्यादा थी। परिवार एवं समाज में कितनी एकता थी। एक-दूसरे के लिये कितनी सहानुभूति थी, कितनी सहनशक्ति थी, कितना धैर्य था। तब के जमाने में न तो इतने सत्संग-सम्मेलन थे। न पाठ-पूजाएँ थीं। न तीर्थयात्राएँ थीं। न समाज-सुधारक व समाज सेवक ही थे। तब के जमाने में विदेशियों का शासन होते हुए भी कितना सुख-शान्ति का वातावरण था। इन बातों को बड़े-बूढ़े लोग अच्छी तरह से जानते हैं।

आज सब कुछ उल्टा हो रहा है। ऐसा क्यों? ज़बकि एक तरफ नेता लोग, दूसरे तरफ सरकार, तीसरे तरफ समाज एवं देश सेवक, चौथे तरफ कर्मयोगी, पाँचवें तरफ साधु-सन्त एवं गुरु लोग, छठे तरफ पण्डित-ज्योतिषी लोग न तो समय पर भोजन करते हैं, न समय पर नींद करते हैं रात-दिन चौबीसों घण्टे दिन दूनी रात चौगुनी जनता जनार्दन की निष्काम, निर्माण, सेवा में जुटे हुए हैं। ऐसे परोपकारी-कार्य व्यस्त लोगों को यदि कोई सज्जन पुरुष सहानुभूतिवश आराम करने के लिये प्रार्थना करता है तो वे लोग एकदम अप्रसन्न हो जाते हैं, और उसे डांट-डपट कर अपना बड़प्पन दिखाते हुए बड़े गर्व से कहते हैं कि, अरे मूर्ख देखता नहीं ! जनता तो दुःखों से चिल्ला रही है, और तुम हमें आराम करने की राय दे रहे हो। तुम नहीं जानते, हमारा जन्म ही जनता जनार्दन की सेवा के लिये हुआ है। इतना होने पर भी पहले जैसी न तो सत्यता है, न मर्यादा है। न धर्म-कर्म हैं, न सम्मान-सत्कार है, न सद्भाव है। न सहयोग है, न सहानुभूति है। न मेल-मिलाप है, न सहनशक्ति है। न धैर्य है, न हिम्मत है, न स्नेह, न सूझ-बूझ। यह सब इसलिये हो रहा है, जो हम लोगों ने अपने पूर्वजों (बड़ों) के चलाये हुए मार्ग को छोड़ कर अपना नया मार्ग बना लिया है। शास्त्रों

के गुप्त रहस्यों को न जानते हुए भी हम लोग अपने आपको बुद्धिमान समझने लगे हैं। परन्तु यह हमारी बड़ी भारी भूल है। हमारे पूर्वज जो कुछ जानते थे उनकी तुलना में हमें रत्ती भर भी ज्ञान नहीं है। केवल साधारण जनता को पण्डिताई दिखाई जा रही है। साधारण जनता के विश्वास का अपहरण और दुरुपयोग किया जा रहा है।

सच तो यह है कि हमारे पूर्वज सन्त-महात्मा लोग ''नाम'' की महिमा, नाम के प्रताप एवं प्रभाव को अच्छी तरह से जानते थे। इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों को ''नाम'' के जप, स्मरण, भजन और कीर्तन करने की आज्ञा दी थी। अगर वे चाहते तो नाम के लिये बैंक खोल सकते थे। जैसे कि हमने खोल रखा है। हमारे पूर्वज तो शिष्यों को योग्य बनाये बिना नाम का उपदेश ही नहीं देते थे। बिना योग्यता के न तो नाम का उपदेश देते थे, न संन्यास देते थे, न उत्तम विद्या ही देते थे। उत्तम विद्या, पवित्र ''नाम'' और संन्यास (गेरुए वस्त्र) ये तीनों सर्वश्रेष्ठ पदार्थ हैं जो बिना योग्यता के नहीं दिये जाते थे, ऐसा वेद शास्त्र बताते हैं। चाहते तो आचार्य सद्गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज, स्वामी सर्वानन्द महाराज और अन्य सन्त-महात्मा भी बैंकें खोल सकते थे, परन्तु नाम के प्रताप एवं प्रभाव को जानने वाले लोग शिष्यों एवं साधारण जनता को गहरे अन्धकार में भला क्यों धकेलेंगे। नाम कोई साधारण वस्तु नहीं है।

श्लोक :- इति मत्वा भजंतेमां बुधा, भावसमन्विता ॥ - गीता

चौ. :- उमा राम स्वभाव जिन जाना, ताहिं भजन तजि भाव न आना।

नाम की महिमा को जानने वाले बुद्धिमान् लोग स्वयं भी सही रास्ता लेते हैं और दूसरों को भी सही मार्ग बताते हैं। ॥ न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः॥

चौ.:- कहौं कहां लग नाम बड़ाई, राम न सकहिं नाम गुन गाई॥

नाम की महिमा बड़ी बताई गई है। स्वयं भगवान रामजी भी नाम की महिमा का पार नहीं पा सकते। अगर यह कहा जाये कि मन को जप में लगाने के लिये ऐसा किया जा रहा है तो यह उद्देश्य भी ठीक नहीं लगता। क्योंकि इस उद्देश्य को अगर बाहर से देखा जाये तो उपकार जान पड़ता है, परन्तु अन्दर से देखा जाये तो इस उद्देश्य के पीछे बड़ा स्वार्थ छिपा हुआ है, जिसे सर्वसाधारण लोग नहीं जानते। मन को वश में करने के लिये सब उपाय किये जा रहे हैं। पर मन बड़ा चंचल है। मन के विषय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्णजी से शिकायत की थी। अर्जुन कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। अर्जुन के विमल व्यक्तित्व को विद्वान लोग जानते हैं। चंचल मन को वश में करना सरल काम नहीं है। भगवान श्रीकृष्णजी ने उसे अभ्यास एवं वैराग्य का उपाय बताया था। पर पवित्र नाम को बैंकों में जमा कराने के लिये आज्ञा नहीं दी थी। अर्जुन जैसे व्यक्ति का मन भी चंचल था तो भला हमारा तुम्हारा मन कितना चंचल होगा यह अनुमान हम लगा सकते हैं। मन को वश में करना बड़ा कठिन काम है। कागजों पर पवित्र नाम को लिखकर बैंकों में जमा कराने से मन और भी बिगड़ जाता है। कैसे बिगड़ जाता है, यह बात औरों को तो क्या पर खुद को भी मालूम नहीं पड़ती । एक तो लोभ-लालच का चक्कर, दूसरा मानसिक अहंकार, तीसरा नाम अपराध। (नाम के दस अपराध बताये गये हैं) उसमें से एक है गुरु का अपमान। आचार्य सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज, स्वामी सर्वानन्दजी महाराज और अन्य सन्तों - महात्माओं ने शिष्यों को नाम का जप, स्मरण कीर्तन और भजन करने के लिये आज्ञा दी है, न कि नाम को बैंकों में जमा कराने के लिये आज्ञा दी है। गुरु की आज्ञा को

न मानना ही गुरु का अपमान है, गुरु के अपमान को ही नाम अपराध कहते हैं। गुरु की आज्ञा को न मानने वाले की सारी मेहनत व्यर्थ चली जाती है। सब पुण्य नाश हो जाते हैं, उसे कोई भी फल नहीं मिलता।

चौ.:- भाय कुभाय अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दस दिसहूँ॥

पवित्र नाम को लिखना कोई पाप नहीं है। श्रद्धा सहित, श्रद्धा रहित, क्रोध से, कामना से, आलस से, किसी भी प्रकार से नाम का जप करने से चारों ओर से सुख शान्ति का वातावरण बन जाता है। यहाँ नाम का कोई खण्डन नहीं है। नाम का खण्डन करने को कोई भी समर्थ नहीं है।

चौ.:- कलियुग केवल नाम अधारा, स्मर स्मर नर उतरसि पारा॥

पवित्र नाम को बैंकों में जमा कराने से अन्धविश्वास बढ़ जाता है। इस बात को बुद्धिमान लोग जानते हैं।

श्लोक :- आयुर्वित्त गृहच्छिद्रं मन्त्रो मैथुनभेषजम्
तपो दानापमानं च, नव गोप्यानि सर्वदा ॥ - नीति शास्त्र

१. आयु २. धन ३. घर की बातें ४. मन्त्र ५. मैथुन ६. औषधि ७. तप ८. दान ९. अपमान। उपरोक्त नव बातों को सदा गुप्त रखने के लिये आदेश दिया गया है। इन नव बातों में मन्त्र भी एक है। नाम को मन्त्र भी कहते हैं। मन्त्र को गुप्त रखने से बहुत लाभ होता है, मन्त्र को प्रकट करने से बड़ी हानि होती है।

(किस मन्त्र (नाम) का जप करें, किस गुरु से नाम लें, कब नाम लें, इत्यादि सब बातों का विचार ''नाम'' लेने से पहले करना चाहिये। नाम लेने से पहले इन बातों के, विचार करने से महान पुण्य की प्राप्ति होती है, नाम लेने के बाद इन बातों पर विचार करने से बड़ा पाप लगता है।) पेड़ एक है, पत्ते अनेक हैं, शब्द एक है अर्थ अनेक हैं।

सर्वानन्द बैंक के नाम जमा कराने का तरीका। (विधि) - प्रतिदिन प्रातः उठकर दांतुन-स्नान इत्यादि नित्य कर्म करने के बाद (किसी कारण से स्नान न कर सकें तो कोई बात नहीं) जहाँ बैठ कर जप करना हो, वहाँ पर आचार्य सद्गुरु टेऊँरामजी महाराज की मूर्ति को रखकर (मूर्ति भले ही छोटी हो जो कहीं भी रखी जा सके) सामने आसन लगा कर बैठ जायें, फिर जप करें। कम से कम १४ (चौदह) मालाएं (या जितनी हो सके) जप करनी चाहिये। मन लगे या न लगे पर आसन से नहीं उठना चाहिये। किसी कारण से देर हो जाये तो नियम पूरा करना चाहिये। जैसे गुरु ने बताया हो वैसे नाम का जप करें। जितना जप करें उसे गुप्त रखें। अपने हृदय को स्वामी सर्वानन्द बैंक समझें। प्रतिदिन जप करने के बाद, जितना जप करें वह बैंक के अध्यक्ष आचार्य सद्गुरु श्री स्वामी टेऊँरामजी महाराज को अवश्य बतायें। कर्म उपासना, ज्ञान, भक्ति, वेदान्त इत्यादि सब से "नाम" बड़ा है। नाम के विषय में समय-समय पर जानकारी दी जायेगी।

चौ. :- नाम लेत भव सिंधु सुखाही, करहु विचार सुजन मन माहीं॥

नाम के विषय में कहाँ तक कहा जाये, नाम लेते ही संसार-सागर सूख जाता है, सज्जन पुरुषों के लिये अत्यन्त विचारणीय विषय है।

संकेत :- गुरु के द्वारा दिया जाने वाला "नाम" मन्त्र है, और भगवान के जो अनन्त नाम हैं वे भी सब मन्त्र हैं। वे सब मन्त्र वेदों, पुराणों, श्रुतियों, स्मृतियों और इतिहासों इत्यादि पुस्तकों में लिखे हुए हैं। शास्त्रों और पुस्तकों में भी तो कागज हैं वे सब मन्त्र कागजों पर ही तो लिखे हुए हैं। इस विषय पर भी विचार किया जायेगा।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

ॐ

॥ श्री सत्नाम साक्षी ॥

॥ सत्नाम साक्षी महामन्त्र ॥

''सत्नाम साक्षी'' विशेषकर हम प्रेम प्रकाशियों के लिये महामन्त्र है। ''प्रेम प्रकाश ग्रन्थ'' पृष्ठ तीन, राग भैरव, भजन ६, सत्नाम साक्षी बोल। उपरोक्त भजन में प्रेमप्रकाश पंथ (सम्प्रदाय) के प्रवर्तक आचार्य सद्गुरु स्वामी टेंऊँरामजी महाराज स्वयं अपनी अनुभव वाणी में लिखते हैं कि ''सत्नाम साक्षी'' यह मन्त्र कोई साधारण मन्त्र नहीं है, पर महामन्त्र है, वेदों-पुराणों से अलग नहीं है, मैंने इस मन्त्र को ''हरि'' कृपा से प्राप्त किया है। विशेषकर प्रेम प्रकाशियों के उद्धार के लिये इस मन्त्र को फैलाया है।

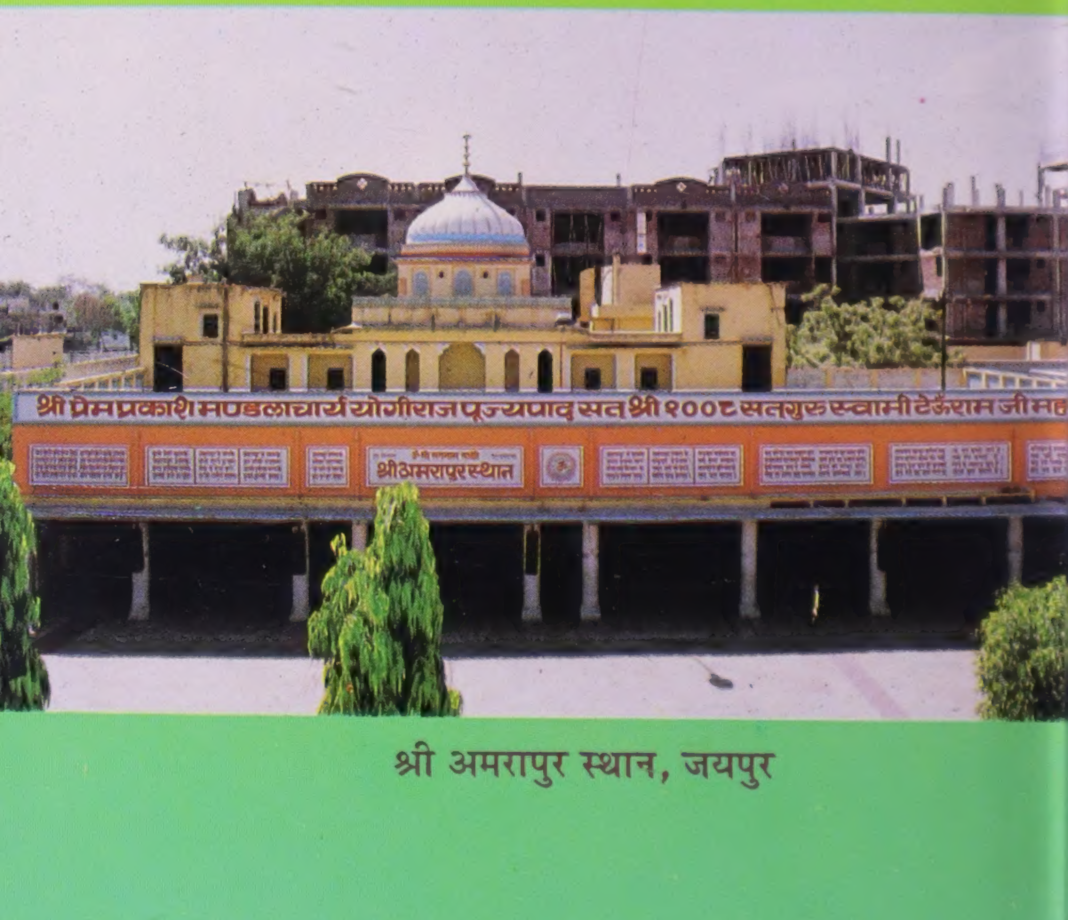
सत्संग में भजन, कीर्तन में तो राम नाम की, जय सीताराम, जय राधेश्याम, जय शंकर, जय झूलेलाल, हर-हर महादेव, ॐ नारायण, शिव नारायण, जय गंगे, जय दुर्गे, हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे-हरे, हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे-हरे, इत्यादि अनेक प्रकार की अनेक रूपों, अनेक तरीकों, अनेक रागों में राम-नाम की धुनियां लगायी जाती हैं, राम-नाम जपाया जाता है। सत्संग में कोई भी धुनि लगाना अच्छा काम तो है ही, पर बड़ा पुण्य भी है, क्योंकि सत्संग और धुनियों का मतलब ही है सभी लोगों को किसी न किसी प्रकार से धर्म-कर्म, मर्यादा और परमात्मा में लगाया जाये। परन्तु प्रणाम (नमस्कार) के रूप में सत्नाम साक्षी हम प्रेम प्रकाशियों का मूल मन्त्र है। सत्नाम साक्षी बोलकर नमस्कार करने से यह मालूम होगा कि यह प्रेम प्रकाशी

है, स्वामी टेऊँरामजी के है। इसलिये हम सब प्रेम प्रकाशियों का परम कर्तव्य है कि हम जब कभी भी आपस में मिलें तो सत्‌नाम साक्षी बोलकर ही मिलें। इसके सिवा बहीखातों, चिट्ठियों, फोटो, मूर्तियों इत्यादि पर भी सत्‌नाम साक्षी ही लिखें। दूसरा कोई भी मन्त्र नहीं लिखना चाहिये। ऐसा करने से यह मालूम होगा कि हम प्रेम प्रकाशियों का अपने गुरु में कितना विश्वास है, कितनी श्रद्धा है। अगर कोई भी प्रेम प्रकाशी सत्‌नाम साक्षी के सिवा किसी दूसरे मन्त्र से नमस्कार करता है, या बहीखातों पर लिखता है, या चिट्‌ठियों, फोटो, मूर्तियों पर लिखता है, तो वह आचार्य सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज, स्वामी सर्वानन्द महाराज का बड़ा भारी अपमान करता है। प्रेम प्रकाशी होते हुए भी उसे प्रेम प्रकाशी नहीं समझना चाहिये। जबकि दूसरे लोग जब कभी हमसे मिलते हैं तो सत्‌नाम साक्षी बोल कर मिलते हैं और हम प्रेम प्रकाशी होकर भी सत्‌नाम साक्षी न बोलकर दूसरे मन्त्रों से नमस्कार करेंगे तो गुरु द्रोही बनेंगे, गुरु द्रोही की गति नहीं होती। हम सभी प्रेम प्रकाशियों का यह परम कर्तव्य है कि आचार्य सद्‌गुरु स्वामी टेऊँरामजी महाराज के चलाये हुए परंपरागत सनातन धर्म को न भूलें, उनके द्वारा चलाये मन्त्र को न बदलें। उनके सिद्धान्तों पर चलने की पूरी-पूरी कोशिश करें।

मन्त्रः- समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये व :
समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ - ऋग्वेद

यदि हम सभी बातों की समानता नहीं कर सकते तो कम से कम मन्त्र को तो समान रखें।

ॐ शान्ति ! शान्तिः !! शान्तिः !!!



श्री अमरापुर स्थान, जयपुर

मुद्रक : जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर